बी.ए.पी.एस. स्वामिनारायण संस्था

युवा अधिवेशन
- 2019 -

अमृतसंचय

(मुखपाठ हेतु वचनामृत का संचय)

सत्संग प्रवृत्ति मध्यस्थ कार्यालय

“हे युवको!
मुखपाठ करने से
शांति होगी।
महाराज-स्वामी
प्रसन्न होंगे, और
आत्मा मे विराजीत होगे।
इसलिए
सभी मुखपाठ जरूर करे।
- योगीजी महाराज”

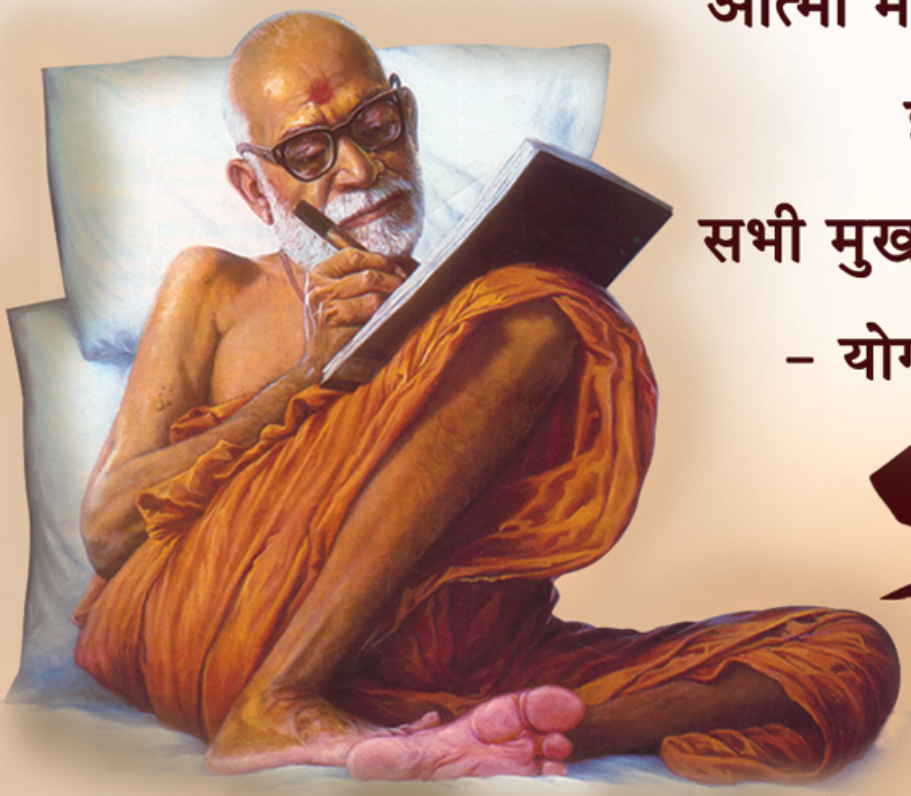

बी.ए.पी.एस. स्वामिनारायण संस्था

प्रमुखस्वामी महाराज शताब्दी महोत्सव
1921-2021

1819-2019
वचनामृत
द्विशताब्दी महोत्सव

युवा अधिवेशन 2019

अमृतसंचय

(मुखपाठ हेतु वचनामृत का संचय)

सत्संग प्रवृत्ति – मध्यस्थ कार्यालय

अनुक्रमणिका

विभाग-1

1. ग. अं. 38 3
2. ग. म. 9 5
3. ग. प्र. 54 7
4. ग. म. 21.....9
5. ग. अं. - 6 11
6. वर-5..... 13
7. ग. प्र. 70..... 16
8. ग. म. 59..... 18
9. ग. प्र. 8 19
10. ग. प्र. 16..... 21
11. ग. प्र. 76..... 22
12. ग. म. 12..... 24
13. ग. अं. 7 25
14. ग. प्र. 67..... 27
15. ग. म. 6 29

विभाग-2

16. ग. म. 13..... 31
17. सारंग. 18..... 32
18. ग. अं. 2 34
19. ग. प्र. 72..... 36
20. कारि. 12 38
21. ग. म. 54..... 39
22. ग. म. 28..... 41
23. ग. म. 41..... 44
24. लोया 6..... 46
25. ग.म. 51..... 48
26. ग.म. 16..... 50
27. ग.म. 35..... 51
28. ग.म. 33..... 52
29. ग.म. 60..... 54
30. लोया 17..... 56

विभाग-3

31. अहमदाबाद - 759
32. ग.अं. 16..... 60
33. ग. प्र. 21..... 62
34. ग.म. 25..... 64
35. ग.म. 57..... 66
36. ग. प्र. 30..... 67
37. ग.अं. 12..... 69
38. ग.म. 27..... 71
39. ग.म. 7 72
40. ग.म.22..... 74
41. पंचाणा 1..... 76
42. ग.म. 47..... 78
43. ग. प्र. 18..... 80
44. ग. प्र. 20..... 82
45. ग. प्र. 22..... 84

विभाग - 1

1 : गढडा अंत्य 38 : सांख्यज्ञान तथा निरंतर सुख!

श्रीजीमहाराज बोले की 'वही सर्वोपरि पुरुषोत्तम भगवान स्वयं दया करके जीवों के कल्याण के लिए इस पृथ्वी पर प्रकट हुए हैं और सभी जनों के दृष्टिगोचर हो रहे हैं। वही आप सबके इष्टदेव हैं और आप सबके द्वारा हो रही सेवा को अंगीकार करते हैं। और ऐसे प्रत्यक्ष पुरुषोत्तम भगवान के स्वरूप में तथा अक्षरधाम में निवास करनेवाले भगवान के स्वरूप में कोई भी भेद नहीं है, वे दोनों एक ही हैं। ऐसे ये प्रत्यक्ष पुरुषोत्तम भगवान तो अक्षरादि सभी के नियन्ता हैं तथा ईश्वरों के भी ईश्वर हैं और समस्त कारणों के भी कारण हैं। वे सर्वोपरि हैं और समस्त अवतारों के अवतारी हैं। ये भगवान

ही आप सबके लिए एकान्तिक भाव से उपासना करने योग्य हैं। इन भगवान के इससे पहले अनेक अवतार हो चुके हैं, जो कि वंदनीय एवं अर्चनीय हैं।

फिर श्रीजीमहाराज ने यह वार्ता भी कही कि 'जिसे द्रव्यादि का लोभ हो, स्त्रियों के बीच बैठने-उठने की वासना हो, स्वादिष्ट पदार्थों में जिह्वा की आसक्ति हो, देहाभिमान हो, कुसंगी से स्नेह रहा करता हो तथा सम्बंधियों से स्नेहभाव हो - जीवन में ये छः बाबतें बनी रहती हों, उसे जीते जी और मरने के बाद भी कभी सुख मिलता ही नहीं! इसलिए, जिसको सुख की इच्छा हो, वह अपने में ऐसे स्वभाव हो, तो उसका त्याग कर दें, और निवृत्ति-परायण हो जाए। उसे तो अपने समवयस्कों का संग भी नहीं रखना चाहिए। और, जो देहाभिमानरहित हैं, तथा वैराग्यवान हैं और भगवान के अल्पवचन के पालन में क्षति हो

जाए, तो उसे बड़े वचन के पालन में भंग हुआ ऐसा समझते हैं, ऐसे भगवद्भक्त महान साधु के साथ अपने जीव को संलग्न कर देना चाहिए; तथा मन, कर्म और वाणी से उन्हीं के वचन में रहना चाहिए। और, विषयों के सम्बंध से दूर ही रहना चाहिए, परन्तु अपने नियमों का त्याग करके विषयों का सम्बंध कभी नहीं होने देना चाहिए। यदि विषय से सम्बंध रखना प्रारंभ करे तो उसका तो ठिकाना ही नहीं रहेगा, यह सिद्धान्त वार्ता है।'

2 : गढड़ा मध्य 9 : स्वरूपनिष्ठा, भगवत्स्वरूप का द्रोह

तत्पश्चात् श्रीजीमहाराज बोले कि 'ज्ञानमार्ग को इस प्रकार समझना चाहिए कि 'किसी भी तरह भगवान के स्वरूप का द्रोह न हो जाए। हाँ, कभी भगवान की आज्ञा का लोप हो गया, तो उसकी इतनी चिन्ता नहीं है, परन्तु भगवान के स्वरूप का

द्रोह कभी नहीं होने देना चाहिए।' यदि भगवान की आज्ञा का कुछ उल्लंघन हो गया, तो भगवान की प्रार्थना द्वारा भी उस (पाप) से छुटकारा मिल सकता है। परन्तु यदि भगवान के स्वरूप का द्रोह किया गया, तो उससे छुटकारा कभी नहीं हो सकता। इसलिए, विवेकशील पुरुष भगवान की आज्ञा का पालन, जितना सामर्थ्य हो, उतना अवश्य करें, परन्तु भगवान की मूर्ति का अतिशय बल रखना कि सर्वोपरि, सदा दिव्य, साकार मूर्ति एवं समस्त अवतारों के अवतारी ऐसे भगवान का जो स्वरूप है, वही मुझे प्राप्त हुआ है।

और जो ऐसा समझता हो, उसे कदाचित् किसी कारणवश सत्संग से निकल जाना पड़े, फिर भी भगवान की मूर्ति से उसका अनुराग नहीं मिटता। हाल में भले ही वह सत्संग से बाहर है, किन्तु उसका देहान्त होने के पश्चात् अन्ततः वह अक्षरधाम में भगवान के सान्निध्य में पहुँचेगा।

और, जो सत्संग में रहता होगा, तथा शास्त्रों के वचनों का भी पालन करता होगा, परन्तु उसे यदि भगवत्स्वरूप में निष्ठा सुदृढ़ नहीं है, तो वह देहत्याग करने के पश्चात् ब्रह्मा के लोक में जाएगा या किसी अन्य देवता के लोक में जाएगा; परन्तु पुरुषोत्तम भगवान के धाम में नहीं जाएगा! इसलिए, स्वयं को प्राप्त साक्षात् भगवान का जो स्वरूप है, उसे सदा दिव्य साकार मूर्ति तथा सर्व अवतारों के कारण और अवतारी समझना। ऐसा यदि उसको नहीं जाना, और उस स्वरूप को निराकार तथा अन्य अवतार के सदृश जाना, तो उसका द्रोह किया कहा जाएगा।

3 : गढडा प्रथम 54 : भागवतधर्म का पोषण और मोक्ष का द्वार

उस समय मुक्तानन्द स्वामी ने प्रश्न पूछा कि 'हे महाराज! श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध में

जनकराजा तथा नव योगेश्वर के संवाद द्वारा बताए गए भागवतधर्म का पोषण कैसे होता है और जीव के लिए मोक्ष का द्वार किस प्रकार खुला रह सकता है ?'

तब श्रीजीमहाराज बोले कि 'स्वधर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा माहात्म्य-ज्ञान सहित भगवद्भक्ति करनेवाले भगवान के एकान्तिक साधु के प्रसंग से भागवतधर्म का पोषण होता है तथा ऐसे साधु के प्रसंग से ही जीवों के लिए मोक्ष का द्वार भी खुल जाता है। यही बात कपिलदेव भगवान ने देवहूति से कही है :

'प्रसंगमजरं पाशमात्मनः कवयो विदुः।
स एव साधुषु कृतो मोक्षद्वारमपावृतम् ॥'

इस जीव को अपने सम्बंधीजनों से जैसा दृढ़ प्रसंग रहता है, वैसा का वैसा ही प्रसंग यदि भगवान के एकान्तिक साधु से रहे, तो इस जीव के लिए मोक्ष का द्वार खुल जाता है।'

फिर शुकमुनि ने पूछा, 'चाहे कैसी भी आपत्ति आ जाए, किन्तु स्वधर्म से विचलित न होनेवाले पुरुष को किस लक्षण द्वारा परखा जा सकता है ?'

तब श्रीजीमहाराज बोले, 'जिसे परमेश्वर के वचनों के पालन की तत्परता रहती हो तथा छोटे-बड़े वचन का लोप न कर सके, ऐसा जिसका स्वभाव हो, उसे चाहे कैसा ही आपातकाल आ जाए, तो भी वह धर्म से च्युत नहीं होता। इसीलिए, जिसमें वचनपालन की दृढ़ता रहती है, उसका ही धर्म सुदृढ़ रहता है, तथा सत्संग भी उसी का सुदृढ़ रहता है। '

4 : गढड़ा मध्य 21 : मोक्ष का रहस्य; प्रत्यक्ष भगवान और सन्त ही कल्याणकर्ता

श्रीजीमहाराज बोले की परन्तु 'कल्याण के

लिए तो भगवान को सर्व-कर्ताहर्ता समझना ही पर्याप्त है। और, जीव जैसे परोक्ष रूप भगवान के रामकृष्णादिक अवतारों की महिमा जानता है, तथा परोक्षरूप नारद-सनकादि, शिवजी, जडभरत, हनुमान और उद्धव आदि साधुओं का माहात्म्य समझता है, वैसा ही माहात्म्य यदि प्रत्यक्ष भगवान और उन भगवान के भक्त साधु का समझ लिया तो उसे कल्याण के मार्ग में कुछ भी समझना शेष नहीं रह जाता। भले ही यह वार्ता एक बार कहने से समझें अथवा लाख बार कहने से समझें, आज समझें या एक लाख वर्षों के बाद समझें, परन्तु इस बात को समझना ही पड़ेगा। और, नारद-सनकादि, शुकजी, ब्रह्मा तथा शिव आदि से पूछिए, तो वे भी बुद्धिमान हैं, अतः अनेक युक्तियों के द्वारा प्रत्यक्ष भगवान तथा प्रत्यक्ष सन्त को ही वे कल्याण के दाता बताएँगे तथा परोक्ष भगवान और परोक्ष सन्त का जैसा माहात्म्य

होता है, वैसा ही माहात्म्य वे प्रत्यक्ष भगवान और सन्त का बताएँगे। और, जिसको इस सिद्धांत का दृढ़ निश्चय हो चुका तो उसे सभी रहस्य हस्तगत हो चुके हैं। कल्याण के मार्ग से उसका कभी भी पतन नहीं होता।'

5 : गढडा अंत्य - 6 : जीव तथा मन की मैत्री

उस समय समस्त हरिभक्तों पर कृपादृष्टि करके श्रीजीमहाराज बोले कि 'वस्तुतः जीवमात्र का ऐसा ही स्वभाव है कि वह यदि कुछ अपराध के दायरे में आ गया, तो वह बोल पड़ता है कि 'मुझे किसी अन्य मनुष्य ने भुलावे में डाल दिया, इसी कारण मुझसे यह भूल हो गई, अन्यथा मुझमें कोई दोष नहीं है।' परन्तु ऐसा कहनेवाला महामूर्ख है, क्योंकि कोई कहेगा कि 'तू कुएँ में गिर पड़', तो

क्या उसके कहने से उसे कुएँ में गिर जाना चाहिए? इसलिए, दोष तो उस मनुष्य का ही है, जो उल्टा काम करता है, और दोष किसी और के सिर मढ़ता है! इसी प्रकार, इन्द्रियों और अन्तःकरण को दोषित ठहराना वह भी जीव की मूर्खता ही है। क्योंकि जीव तथा मन एक-दूसरे के घनिष्ठ मित्र हैं। जिस प्रकार दूध और पानी की मित्रता रहती है, उसी तरह जीव तथा मन की मैत्री बनी रहती है। सो जब दूध और पानी को मिलाकर अग्नि पर रखा जाता है, तब पानी दूध के नीचे बैठ जाता है, और स्वयं जलने लगता है, किन्तु दूध को नहीं जलने देता। इसी तरह दूध भी पानी को बचाने के लिए स्वयं उफ़नकर आग को बुझा डालता है। ऐसा दोनों का पारस्परिक मित्रभाव है! ठीक उसी प्रकार जीव तथा मन की परस्पर मैत्री है, अतः जो बात जीव को रुचिकर न हो, उसका तो मन में संकल्प भी नहीं हो पाता।'

6 : वरताल 5 : भगवान में माया न समझना; भक्त-भगवान की समान सेवा

फिर नित्यानन्द स्वामी ने पूछा कि 'हे महाराज! यह बात ठीक है कि भगवान के आश्रय में जाना चाहिए, परन्तु उस आश्रय का स्वरूप यानी शरणागत का लक्षण क्या है?'

तब श्रीजीमहाराज बोले कि 'भगवान ने गीता में कहा है कि –

'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥'

इस श्लोक में कहा गया है कि 'तू अन्य समस्त धर्मों का परित्याग करके एकमात्र मेरी शरण में ही आ जा, तो मैं तुझको समस्त पापों से मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर।' जिसको भगवान का ऐसा दृढ़ आश्रय हो गया हो, उसको यदि

महाप्रलय जैसा दु:ख प्राप्त हो जाए, तब भी उस दु:ख से रक्षा करनेवाला भगवान के बिना अन्य किसी को न माने; और, स्वयं को जिस-जिस सुख की इच्छा हो, वह भी भगवान से ही याचे, लेकिन भगवान के सिवा अन्य किसी को भी सुखदायक न माने, तथा प्रभु की जैसी मर्ज़ी हो, उसी के अनुसार ही आचरण करे, ऐसा जो भक्त है, उसी को प्रभु का शरणागत जीव कहा जाता है और वही भगवान का अनन्य भक्त कहलाता है।'

यह सुनकर नित्यानन्द स्वामी ने पूछा कि 'ऐसी कसर मिटे, और कनिष्ठ भक्त भी उत्तम भक्त का स्थान इसी जन्म में प्राप्त कर सके, वह किस प्रकार संभव होता है?'

तब श्रीजीमहाराज बोले कि 'जैसे भगवान की मानसी पूजा की जाती है, वैसे ही जो उत्तम हरिभक्त हो उसकी भी भगवान की प्रसादी

से भगवान के साथ मानसी पूजा की जाए; तथा जिस प्रकार भगवान के लिए थाल अर्पण किया जाता है, वैसे ही भगवान के उत्तम भक्त के लिए भी थाल अर्पण करें, एवं जिस तरह भगवान के लिए पाँच रुपये खर्च किए जाते हैं, वैसे ही ऐसी रकम बड़े सन्त के लिए भी खर्च करे। उसी प्रकार जो पुरुष भगवान तथा उनके उत्तम लक्षणवाले सन्त की अत्यन्त ही प्रेमपूर्वक समानभाव से सेवा करता है, वह यदि कनिष्ठ भक्त हो, तथा दो जन्मों, चार जन्मों, दस जन्मों अथवा एक सौ जन्मों के बाद भी यदि उत्तम भक्त सदृश होनेवाला हो, तो वह इसी जन्म में उत्तम भक्त हो जाता है। यह भगवान तथा उन भगवान के भक्त की समान रूप से सेवा करने का फल है।'

7 : गढड़ा प्रथम 70 : सत्संग-महिमा तथा भगवन्निश्चय की अडिगता

तब श्रीजीमहाराज बोले कि 'अब हम इसका उत्तर देते हैं कि भगवान का निश्चय करना, वह केवल अपने जीव के कल्याण के लिए ही करना, लेकिन किसी पदार्थ की लालसा से नहीं करना। जैसे कि 'यदि मैं सत्संग करूँ, तो मेरा रोग दूर हो जाए अथवा नि:संतान हूँ तो पुत्र मिले, या पुत्र की मृत्यु हो जाती है, तो वह जीवित रहे, अथवा निर्धन हूँ तो धनवान हो जाऊँ, या भू-सम्पत्ति चली गई है, वह सत्संग करने से वापस आ जाए।' इस प्रकार पदार्थों की लालसा रखकर सत्संग नहीं करना। जो मनुष्य ऐसी इच्छा के साथ सत्संग करता है, उसकी पदार्थों की लालसा यदि पूरी हो गई, तो वह पक्का सत्संगी बन जाता है, और यदि इच्छा पूर्ण न हुई, तो भगवान सम्बंधी

निश्चय कम हो जाता है।

इसलिए सत्संग अपने जीव के कल्याण के लिए ही करना। किन्तु किसी प्रकार के भौतिक पदार्थों की इच्छा तो रखनी ही नहीं। क्योंकि अगर घर में दस मनुष्य हों उन सभी का मृत्युकाल उपस्थित हो गया, तब उनमें से एक भी आदमी बच गया तो क्या कम है? अथवा प्रारब्ध में यदि भिक्षा माँगने का योग हो और रोटियाँ खाने को मिलें, तो क्या कम है? सबकुछ जाने वाला था, उसमें से यदि इतना बच गया है, तो वह पर्याप्त है, ऐसा मानना।

इस प्रकार अत्यधिक दुःख आनेवाला हो, वह परमेश्वर के आश्रय को ग्रहण करने से निश्चित रूप से कम तो होता है, परन्तु जीव को यह बात समझ में नहीं आती। अन्यथा एक बात तो पक्की है कि किसी को सूली चढ़ने का योग हो, तो ऐसा दुःख केवल काँटा लगने मात्र से भी

टल जाता है, इतना अन्तर भगवान के आश्रय से पड़ता है।

8 : गढडा मध्य 59 : परम कल्याण

उस समय श्रीजीमहाराज बोले कि 'चारों वेद, पुराण, तथा इतिहास आदि सभी ग्रंथों में यही बात कही गई है कि भगवान तथा भगवान के संत ही कल्याणकारी हैं।' और, भगवान के जो संत हैं, वह तो भव-ब्रह्मादि देवों से भी अधिक हैं। अतः भगवान तथा भगवान के सन्त की जब प्राप्ति हुई, तब उस जीव के लिए उससे बढ़कर दूसरा कोई कल्याण ही नहीं है, यही परम कल्याण है। और, भगवान के सन्त की सेवा तो अत्यधिक पुण्यवान आत्मा को ही प्राप्त होती है, किन्तु अल्प पुण्यवाले को यह सेवा नहीं मिलती। इसलिए, भगवान के सन्त के प्रति ऐसा स्नेह-भाव रखना चाहिए, जैसा स्नेह अपनी स्त्री से है, या पुत्र से

है, अथवा माता-पिता और भाई से है। ऐसे स्नेह से जीव कृतार्थ हो जाता है। और, संसार में अपने स्त्री-पुत्रादि चाहे कुपात्र और कुलक्षण वाले ही क्यों न हों, फिर भी उनके दुर्गुणों पर किसी प्रकार ध्यान नहीं देते; जबकि भगवान के भक्त समस्त शुभगुणों से युक्त होते हैं; फिर भी यदि उन्होंने कुछ तनिक-सा भी कटु वचन बोल दिया, तो उसकी चुभन जिसे जीवन की अन्तिम साँस तक खटकती रहे; ऐसी वृत्ति जिसकी है, उसे अपने सम्बंधीजनों के जैसा स्नेह भगवान के उन भक्त पर भी है, ऐसा कहा ही नहीं जा सकता। इसलिए, उसका कल्याण भी नहीं होता।

9 : गढडा प्रथम 8 : भगवान एवं सन्त की सेवा

तब श्रीजीमहाराज बोले कि 'इन्द्रियों की जो क्रियाएँ हैं, उन्हें यदि श्रीकृष्ण भगवान तथा उनके भक्त की सेवा में लगाए रखें, तो अन्त:करण शुद्ध

हो जाता है तथा जीव के अनन्तकाल के पापों का नाश हो जाता है। जो इन्द्रियों की वृत्तियों को स्त्री आदि विषयों में लगाए रखता है, उसका अंत:करण भ्रष्ट हो जाता है और कल्याण-मार्ग से उसका पतन हो जाता है। इसलिए शास्त्रों में जिस प्रकार विषयों को भोगने का निर्देश दिया गया है, उसी प्रकार नियम में रहकर उनका उपभोग करना चाहिए, परन्तु शास्त्रों की मर्यादा का उल्लंघन करके उनका उपभोग नहीं करना चाहिए। इसके साथ ही साधुओं का संग करना चाहिए और कुसंग का परित्याग कर देना चाहिए। इस प्रकार जो कुसंग का त्याग करके साधु का सत्संग करता है, तब उसे 'मैं देह हूँ' ऐसी अहंबुद्धि निवृत्त हो जाती है तथा देह के सम्बंधियों के प्रति ममत्वबुद्धि का भी लोप हो जाता है, भगवान के प्रति असाधारण प्रीति हो जाती है और भगवान के सिवा अन्य सांसारिक विषयों से उसको वैराग्य हो जाता है।'

10 : गढडा प्रथम 16 : विवेकशीलता

फिर श्रीजीमहाराज ने कहा, 'भगवान के जिस भक्त में सत्-असत् का विवेक हो, वह अपने में विद्यमान दोषों को जान लेता है और विचार करके उन अवगुणों का परित्याग करता है। यदि सन्त में अथवा किसी सत्संगी में स्वयं को कोई दोष होने का आभास हो, तो वह उसका त्याग कर देता है और केवल उसके गुण को ही ग्रहण करता है और उसे परमेश्वर के स्वरूप में तो किसी दोष का आभास ही नहीं होता और भगवान तथा सन्त जो कुछ भी कहें, उसे परम सत्य मानकर उनके वचनों में कभी संशय नहीं करता; यदि सन्त यह कहें कि 'तुम देह, इन्द्रियों, मन और प्राण से भिन्न हो, सत्य हो और इन सभी के ज्ञाता हो और ये देहादिक सब असत्य हैं।' इन वचनों को सत्य समझकर उन सबसे अलग रहकर वह

आत्मरूप में व्यवहार करे, परन्तु मन के कुसंकल्पों के चक्कर में न फँस जाए; और जिसके कारण स्वयं को बन्धन हो तथा अपने एकान्तिक धर्म में बाधा पड़ती हो, ऐसे पदार्थों तथा कुसंग से सुविदित रहे, तथा उनसे दूर ही रहे; और कभी उनके बंधन में न फँसे; और एकांतिक धर्म में पुष्टिकर्ता विचार को ही ग्रहण करे तथा उसके विरुद्ध विचार का परित्याग कर दे। – इस प्रकार का जिसमें आचरण हो, तो समझ लें कि उसमें 'विवेक' है।'

11 : गढडा प्रथम 76 : क्रोधी, ईष्यालु, कपटी एवं मानी व्यक्ति

उस समय श्रीजीमहाराज ने उनके समक्ष वार्ता कही कि 'क्रोधी, ईर्ष्यालु, कपटी तथा मानी, ये चार प्रकार के मनुष्य हरिभक्त होने पर भी उनके साथ हमारी नहीं बनती! और, क्रोध एवं

ईर्ष्याभाव दोनों मान के आधार पर रहते हैं। तथा कामी का तो हमें कभी विश्वास ही नहीं होता कि 'यह सत्संगी है।' कामी पुरुष सत्संग में रहते हुए भी विमुख जैसा रहता है।

जिसे पंचव्रतमानों में किसी भी प्रकार की कमी न हो, तथा उसे हम चाहे जितनी कठिन आज्ञा करें तथा उसको अपनी पसन्द का सोचा हुआ विचार छुड़ाकर उसे हमारी अपनी रुचि के अनुसार रखें, फिर भी वह जीवनपर्यन्त ग्लानि-मुक्त रहे, वही पक्का सत्संगी है। ऐसे हरिभक्त पर हमें सहज ही बिना स्नेह किए ही स्नेह उमड़ पड़ता है। किन्तु जिसमें ऐसे गुण न हों, उस पर यदि हम स्नेह करने का यत्न भी करें फिर भी स्नेह नहीं होता। हमारा यही स्वभाव है कि जिसके हृदय में भगवान की ऐसी परिपूर्ण भक्ति होती है, उस पर ही स्नेह होता है।'

12 : गढडा मध्य 12 : आध्यात्मिक मार्ग की राजनीति

तब मुक्तानन्द स्वामी ने श्रीजीमहाराज से पूछा कि 'कल्याण की इच्छा रखनेवाले पुरुष को राजनीति की शिक्षा किस प्रकार ग्रहण करें ?'

तब श्रीजीमहाराज बोले कि 'इस राजनीति की शिक्षा तो इस तरह ग्रहण करें कि सबसे पहले भगवान का माहात्म्य अच्छी तरह समझना। बाद में भगवान की मूर्ति का ध्यान करके मन को वश में कर लेना। इसके पश्चात् भगवान की कथा सुनकर अपनी श्रोत्रेन्द्रिय को वश में कर लेना। परन्तु, लौकिक बातें श्रोत्र को कभी सुनने ही देना नहीं चाहिए! इसी प्रकार त्वचा केवल भगवान तथा उनके भक्तजनों का ही स्पर्श करे तथा नेत्र केवल परमेश्वर तथा उनके सेवकों का ही दर्शन करे और जीभ निरन्तर भगवद्गुणों का ही गान करे एवं भगवान के प्रसाद का ही रसास्वादन

करे। इसके उपरांत नासिका केवल भगवान के प्रसादी-पुष्पादि की ही सुगन्ध ले। परन्तु किसी भी इन्द्रिय को कुमार्गगामी नहीं होने दे। इस प्रकार जो आचरण करता है, उसके देहरूपी नगर में कोई भी आज्ञालोप नहीं कर सकता। जो पुरुष इस प्रकार पुरुषार्थ-पूर्वक आचरण रखता है तथा कायरता का अच्छी तरह त्याग कर देता है, वही कल्याण पथ पर अग्रगामी हुआ है, और उसके लिए स्वभावों पर जीत पाने का भी सबसे बड़ा यही उपाय है।

13 : गढडा अंत्य 7 : वज्र की कील

उस समय श्रीजीमहाराज समस्त हरिभक्तों के प्रति बोले कि 'हमारे अंतर का जो सिद्धान्त है, उसे बताते हैं कि जो भक्त अपने कल्याण का इच्छुक हो, उसके लिए भगवान और उनके साधु के सिवा जगत में दूसरा कुछ भी सुखदायी नहीं है। इसीलिए जिस प्रकार जीव को अपने शरीर

के प्रति आत्मबुद्धि रहती है, वैसी आत्मबुद्धि भगवान तथा उनके सन्त के प्रति रखनी चाहिए और भगवान के भक्त का पक्ष सुदृढ़ करके रखना चाहिए। भगवान के भक्त के पक्षधर होते हुए यदि हमारी प्रतिष्ठा बढ़ जाए, या फिर कम हो जाए, कदाचित् हमारा सम्मान हो या अपमान हो, हमारा शरीर कदाचित् रहे या न रहे, किन्तु किसी भी प्रकार से भगवान और भगवान के भक्त का पक्ष नहीं छोड़ना चाहिए तथा उनके प्रति दुर्भाव नहीं आने देना चाहिए। और, भगवान के भक्त में जैसी प्रीति है, वैसी प्रीति देह और देह के सम्बंधी जनों के साथ नहीं रखनी चाहिए। जो हरिभक्त इस प्रकार आचरण करता है, उसको अति बलवान काम-क्रोधादि शत्रु भी पराजित नहीं कर सकते।

और, भगवान के ब्रह्मपुर धाम में भगवान सदैव साकार-मूर्तिमान विराजमान हैं तथा भगवान के भक्त भी वहाँ मूर्तिमान रूप से परमेश्वर की

सेवा में जुटे रहते हैं। जिसे उन भगवान का प्रत्यक्ष प्रमाण दृढ़ आश्रय हो गया, उसे अपने मन में ऐसा भय नहीं रखना चाहिए कि 'मैं कदाचित् अपनी मृत्यु के बाद भूत-प्रेत तो नहीं होऊँगा? या मुझे इन्द्रलोक अथवा ब्रह्मलोक की प्राप्ति तो नहीं होगी?' ऐसी शंका मन में नहीं रखनी चाहिए, क्योंकि भगवान का जो ऐसा भक्त हो, वह भगवान के धाम में ही जाता है और भगवान ही उसे बीच में कहीं भी नहीं रहने देंगे।'

14 : गढडा प्रथम 67 : सत्पुरुष के गुण प्राप्त होने के उपाय

तब श्रीजीमहाराज बोले, 'यह उत्तर तो ठीक है, परन्तु इस तरह समझे, तो महान सत्पुरुष के गुण मुमुक्षु के अंतर में सिद्ध होते हैं, उस समझ की रीति को बताते हैं, उसे सुनिए। जिन पुरुष को परमेश्वर के सिवा अन्यत्र कहीं भी प्रीति नहीं होती, उनके गुणों को मुमुक्षु इस प्रकार ग्रहण

करता रहे कि 'ये पुरुष तो बहुत बड़े हैं, और इनके आगे लाखों मनुष्य हाथ जोड़कर खड़े रहते हैं, फिर भी वे संसार के सुखों की लेशमात्र भी इच्छा नहीं करते हैं। और, मैं तो ऐसा घोर पामर जीव हूँ कि केवल सांसारिक सुखों में ही आसक्त रहता हूँ और परमेश्वर की वार्ता को तो लेशमात्र भी नहीं समझता, इसलिए मुझे धिक्कार है।' इस प्रकार की आत्मग्लानि करता हो, तथा उन सत्पुरुष के गुणों को ग्रहण करता हो, तथा अपने अवगुणों पर पश्चात्ताप करता रहता हो। तत्पश्चात् ऐसे पश्चात्ताप करते-करते उसके हृदय में वैराग्य उत्पन्न हो जाता है, इसके बाद उसमें सत्पुरुष जैसे गुण आते हैं।

अब जिसके हृदय में सत्पुरुष के गुण बिल्कुल नहीं आते, उसके लक्षण कहते हैं, उन्हें सुनिए। जो पुरुष ऐसा समझता है कि 'यद्यपि ये महा-पुरुष कहलाते हैं, फिर भी इनमें किसी प्रकार का विवेक

नहीं है, इन्हें न तो खाने-पीने का ढंग ही मालूम है और न ओढ़ना तथा कपड़े पहनना ही आता है। और, परमेश्वर ने इन्हें बहुत सुख दिया है, फिर भी उसका उपभोग करना नहीं आता और वे किसी को कुछ देते भी हैं, तो उसे बिना विचार-विवेक के ही दे देते हैं।' इस प्रकार सत्पुरुष में ऐसे अनंत प्रकार के अवगुण ठहराता रहता है, ऐसे दुर्बुद्धि पुरुष में कभी सत्पुरुष के गुण आते ही नहीं।'

15 : गढडा मध्य 6 : हूंडी; चित्त का स्वभाव

इतना कहकर श्रीजीमहाराज ने उस प्रश्न का उत्तर देना प्रारम्भ किया कि 'महापुरुषों ने शास्त्रों में जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है, वह पूर्णतः सत्य है। इस प्रसंग में एक दृष्टान्त विचार करने लायक है, कि जब कोई बड़ा साहूकार किसी को हुंडी लिखकर देता है, तब उस कागज़ में एक रुपया भी नज़र नहीं आता, परन्तु उल्लिखित रकम

बिलकुल सच्ची है। क्योंकि वह हुंडी जिस धनाढ्य पुरुष के नाम पर लिखी गयी है, उसे जब वह कागज मिलेगा, तो वह रुपये की भुगतान अवश्य करेगा, और रुपयों का ढेर लग जाएगा। वैसे ही महापुरुष की आज्ञा से जो धर्म का पालन किया करता है, उसे पहले-पहल तो उन विधिनिषेधों में कोई विशेषता नहीं दिखाई पड़ेगी, परन्तु सत्पुरुष की आज्ञा के पालन करनेवाले का अन्त में कल्याण ही होता है। जैसे हुंडी के भुगतान से रुपये प्राप्त हो जाते हैं, उसी प्रकार।

और, जिस समर्थ धनवान व्यक्ति ने हुंडी लिखी है, उस पर जिसे विश्वास नहीं होता, उसे मूर्ख ही समझना चाहिए, क्योंकि उसे उस धनवान पुरुष के प्रताप की जानकारी ही नहीं है। इसी प्रकार जिसको नारद-सनकादिक एवं व्यास, वाल्मीकि आदि महापुरुषों के वचनों में विश्वास नहीं है, उसे नास्तिक और घोर पापी मानना चाहिए।

विभाग - 2

16 : गढडा मध्य 13 : श्रीहरि के स्वरूप का ज्ञान; यथार्थ निश्चय

श्रीजीमहाराज बोले की 'और, यह बात अवश्य समझ लें कि 'तेज:पुंज (अक्षरधाम) में जो मूर्ति है, वे ही ये प्रत्यक्ष महाराज हैं।' इस बात को दृढ़ करना। यदि यह बात मानने में संशय हो, तो इतना अवश्य मानना कि 'अक्षर-रूप तेज में जो मूर्ति है, उसे महाराज देखते हैं।' यदि इतना भी जान लिया, तो भी हमारे प्रति आपका स्नेह बना रहेगा तथा उससे आपका परमकल्याण होगा। और, इस बात को प्रतिदिन ताज़ा बनाये रखना, लेकिन लापरवाह होकर इसका विस्मरण मत करना। जैसी तुम्हें इस बात की स्मृति आज हो, वैसी की वैसी कल भी रखना और जीवन के

अन्त तक इसे दिन-प्रतिदिन बिल्कुल नूतन ही नूतन रखिएगा। और, आप भगवान की जो-जो बातें करें, उस प्रत्येक बात में इस बात का बीज बताते रहना, ऐसी मेरी आज्ञा है। और, यह वार्ता इतनी जानदार है कि देह रहने तक भी इसे प्रतिदिन करते रहना तथा देहत्याग के बाद भागवती तन द्वारा भी इसी बात को करना है। और यह जो बात हमने आपको बतायी है, वह समस्त शास्त्रों का सिद्धान्त है और, अनुभव में भी यही बात हमें सुदृढ़ है, तथा हमने प्रत्यक्षरूप से देखकर ही आपको यह बात बतायी है। यदि हमने इसे प्रत्यक्षरूप से नहीं देखा हो, तो हमें समस्त परमहंसों की कसम है।'

17 : सारंगपुर 18 : खार भूमि

उस समय श्रीजीमहाराज बोले कि, 'जो श्रद्धावान पुरुष हो, उसको यदि सच्चे सन्त का संग मिल जाए तथा वह उनके वचनों

में श्रद्धावान हो जाए, तो उसके हृदय में स्वधर्म, वैराग्य, विवेक, ज्ञान, भक्ति आदि सर्व कल्याणकारी गुण प्रकट हो आते हैं तथा उसके हृदय से काम-क्रोधादि विकार भस्म हो जाते हैं। और अगर उसे कुसंग मिल गया और वह कुसंगी के वचनों में श्रद्धावान हो गया, तो वैराग्य, विवेकादि सभी गुणों का नाश हो जाता है। जैसे खार भूमि में चाहे कितनी ही वर्षा क्यों न हो, किन्तु उसमें तृणादि नहीं उगते। उसी खारभूमि में अगर भारी वर्षा के कारण बाढ़ आ जाए, तो वहाँ का खार धुल जाता है। और, जिस जगह खार था, वहाँ नयी मिट्टी बहकर आ जाती है। उस मिट्टी के साथ यदि बड़, पीपल आदि वृक्षों के बीज आ गए हों, तो उनके बीज उगकर बड़े-बड़े वृक्ष खड़े हो जाते हैं। वैसे ही जिसके हृदय में पूर्वोक्त स्वधर्म आदि गुणों की दृढ़ता रही हो, तथा संसार सम्बंधी विषयसुखों का अंकुर भी उसके हृदय में नहीं उग सके, ऐसी दृढ़ता हो, फिर भी यदि उसे कुसंग

मिल गया, तो उसके हृदय में कुसंगरूपी जल के वेग से सांसारिक वार्तारूप नयी मिट्टी आकर जम जाती है। बाद में उस मिट्टी में काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सरादि के बीज उगकर विशाल वृक्ष बन जाते हैं। इसलिए, भगवान के भक्तों को कभी भी कुसंग नहीं करना चाहिए।'

18 : गढडा अंत्य 2 : सर्वार्थसिद्धि; प्रकट गुरुरूप हरि

श्रीजीमहाराज बोले कि, 'क्योंकि यथार्थ बात तो यह है कि जैसी सभा श्वेतद्वीप में है, और जैसी सभा गोलोक या वैकुंठलोक में है तथा जैसी सभा बदरिकाश्रम में है, उनसे भी अधिक मैं इन सत्संगियों की सभा को जानता हूँ और समस्त हरिभक्तों को अतिशय प्रकाशयुक्त देखता हूँ। यदि मैं यह बात लेशमात्र भी मिथ्या कहता होऊँ तो इस सन्त-सभा की सौगन्ध है।

यह सौगन्ध क्यों लेनी पड़ती है? तो सबको इस प्रकार की अलौकिकता न तो समझ में आती है, और न तो दिखाई ही पड़ती है! इसलिए सौगन्ध लेनी पड़ती है।

ब्रह्मादि को भी दुर्लभ ऐसा यह सत्संग प्राप्त होने पर यदि कोई भक्त परमेश्वर को छोड़कर अन्य पदार्थ से अपना चित्त लगाये रखता है, तो इसका कारण यही है कि इस जीव को भगवान के परोक्षस्वरूप में जैसी प्रतीति होती है, वैसी दृढ़ प्रतीति भगवान के प्रत्यक्षस्वरूप में नहीं होती है! श्रुति में यही बात बताई गई है कि परोक्ष देवों में जीव को जो प्रतीति है, वैसी प्रतीति यदि प्रत्यक्ष गुरुरूप हरि में हो जाए तो, जितने भी अर्थ प्राप्त होने को कहा है, वे समस्त अर्थ उसको प्राप्त हो जाते हैं। और, जब ऐसा सन्त-समागम प्राप्त हुआ है, तब यह समझना चाहिए कि देहत्याग के बाद जो भगवान को प्राप्त करना था, वही

भगवान आज इसी देह में प्रत्यक्ष प्राप्त हुए हैं; इसलिए, जिसको परमपद कहते हैं, मोक्ष कहते हैं, वह आज सदेह ही प्राप्त हो गया है!

19 : गढडा प्रथम 72 : माहात्म्ययुक्त निश्चय

श्रीजीमहाराज बोले कि, 'और, जो पुरुषोत्तम भगवान क्षर-अक्षर से परे हैं, वे जब जीवों के कल्याण के लिए ब्रह्मांड में मनुष्यरूप धारण करके विचरण करते हैं, तब वे मनुष्यों के समान ही समस्त लीला दिखाते हैं। जिस प्रकार मनुष्यों में जय, पराजय, भय, शोक, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, आशा, तृष्णा तथा ईर्ष्या आदि मायिक स्वभाव होते हैं, वैसे ही स्वभाव भगवान भी अपने स्वरूप में दिखलाते हैं। वास्तव में भगवान की ऐसी समस्त लीलाएँ जीवों के कल्याण के लिए ही होती हैं। फिर जो भक्त हैं,

वे इन लीलाओं का गान करके परमपद को प्राप्त करते हैं, किन्तु विमुख जीव, उन लीलाओं में दोष देखते हैं। जिस प्रकार भगवान क्षर की आत्मा हैं, वैसे ही वे प्रकृति-पुरुष से परे रहेनेवाले अक्षरब्रह्म की भी आत्मा हैं तथा क्षर-अक्षर को अपनी शक्ति द्वारा धारण किए हुए हैं। और वे स्वयं तो क्षर-अक्षर से भिन्न हैं। तथा भगवान की महिमा ऐसी अपरंपार है कि 'जिनके एक-एक रोम के छिद्र में अनन्तकोटि ब्रह्मांड परमाणु के समान रह रहे हैं,' ऐसे अत्यन्त महान भगवान जीवों के कल्याण के लिए मनुष्य जैसे हो जाते हैं, तब जीवों को सेवा करने का अवसर मिलता है।

और यदि भगवान जैसे हैं, वे वैसे के वैसे ही बने रहें, तो ब्रह्मांड के अधिपति ब्रह्मादिक देवों में भी भगवान के दर्शन और सेवा करने का सामर्थ्य नहीं रहता। तब मनुष्यों में तो ऐसा सामर्थ्य रहेगा ही कैसे ?'

20 : कारियाणी 12 : इमली के चीयें का दृष्टांत; कारण शरीर का नाश

फिर श्रीजीमहाराज ने कहा कि 'चाहे कैसा ही कामी, क्रोधी, लोभी और लम्पट जीव हो, वह यदि इस प्रकार की बातों में विश्वास रखकर इसे प्रीतिपूर्वक सुनता है, तो उसके सभी विकार मिट जाते हैं। जैसे किसी पुरुष के दाँत पहले तो इतने मज़बूत होते हैं कि वह कच्चे चने चबा जाता है, परन्तु वह यदि कच्चा आम अच्छी तरह खा ले, तो भात भी चबाकर नहीं खा सकेगा। ठीक वैसे कामादि में आसक्त कैसा ही पुरुष क्यों न हो, वह यदि आस्तिक होकर इस वार्ता को श्रद्धापूर्वक सुनता है, तो ऐसा पुरुष विषयों के सुख को भोगने में समर्थ नहीं होता। यदि वह तप्तकृच्छ्र चान्द्रायणादि व्रत द्वारा अपनी देह को कृश बना दे, तो भी उसका मन वैसा निर्विषयी नहीं हो पाता,

जैसा कि ऐसी भगवद्वार्ता सुननेवाले मनुष्य का मन निर्विषयी हो जाया करता है। ऐसी बात सुनने के बाद आप सबका मन जिस प्रकार निर्विकल्प हो जाता होगा, वैसा तो ध्यान करते हुए अथवा माला फेरते हुए भी निर्विकल्प नहीं होता होगा। इसीलिए, विश्वासपूर्वक, प्रीति सहित जो भगवान पुरुषोत्तम नारायण की वार्ता को सुनना, इससे बढ़कर मन को स्थिर रखने का तथा निर्विषयी बनाने का अन्य कोई बड़ा साधन नहीं है!'

21 : गढडा मध्य 54 : सत्संग की महिमा; सत्पुरुष में आत्मबुद्धि

उस समय श्रीजीमहाराज ने मुनियों से प्रश्न किया कि 'श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध के बारहवें अध्याय में श्रीकृष्ण भगवान ने उद्धवजी से कहा है कि 'अष्टांगयोग, सांख्य, तप, त्याग, तीर्थ, व्रत, यज्ञ और दानादि साधनों से मैं इतना वश में

नहीं होता, जितना कि सत्संग द्वारा वश में हो जाता हूँ।' भगवान ने ऐसा बताया है। अतः स्पष्ट है कि समस्त साधनों की अपेक्षा सत्संग का महत्त्व अधिक है। सो समस्त साधनों की अपेक्षा सत्संग की महत्ता जिसे अधिक प्रतीत होती हो, उसके कैसे लक्षण होते हैं?'

इस प्रश्न के उत्तर में जिसको जैसा समझ में आया, उसने वैसा बताया, किन्तु कोई भी यथार्थ उत्तर न दे पाया। तब श्रीजीमहाराज बोले कि 'जिसे भगवान के सन्त के साथ ही आत्मबुद्धि (गाढ़ प्रीति) है। उसी ने सत्संग को सबसे अधिक कल्याणकारी जान लिया है। जैसे कोई निःसंतान राजा को अपनी वृद्धावस्था में पुत्र प्राप्ति हुई, तो वह बड़ा होने पर उसी राजा को गालियाँ दे अथवा मूँछ ताने, फिर भी उसको, उसके प्रति दुर्भाव नहीं होता! और उसका वह पुत्र किसी लड़के को मारे-पीटे अथवा गाँव में जाकर कुछ अनीति का कर्म

करे, फिर भी राजा को उसमें किसी भी प्रकार का अवगुण दिखाई नहीं पड़ता। इसका कारण यही है कि उस राजा को अपने लड़के में आत्मबुद्धि हो गई है। इस प्रकार जिसको भगवान के भक्त में आत्मबुद्धि हुई, तो जानना चाहिए कि उसी ने समस्त साधनों की अपेक्षा सत्संग को अधिक कल्याणकारी समझ लिया है।

22 : गढडा मध्य 28 : जीवन-डोर और दयालुता

श्रीजीमहाराज बोले कि, 'और, जिस-जिसको भगवान के भक्त के प्रति दुर्भाव हुआ है, वे बहुत बड़े होने पर भी अपने स्थान से गिर गए हैं। तथा जिसका भला होता है, वह भी भगवान के भक्त की सेवा से ही सम्भव होता है और जिसका बुरा होता है वह भी भगवद्भक्त का द्रोह करने के

कारण ही होता है। यदि जीव भगवान को प्रसन्न करना चाहता है, तो उसका उपाय यही है कि उसे मन, कर्म और वचन द्वारा भगवान के भक्त की सेवा करनी चाहिए, और भगवान के भक्त का द्रोह करना ही भगवान को अप्रसन्न करने का कारण बनता है।

इसलिए, हमारा यही सिद्धांत है कि भगवान की प्रसन्नता हो, तथा भगवान के भक्त का संग हो, तो भगवान से चाहे अनन्त वर्षों तक दूर क्यों न रहना पड़े, पर मन में किसी भी प्रकार का दुःख नहीं होता। परन्तु भगवान के पास रहते हुए भी यदि भगवान की प्रसन्नता न रही, तो मैं उसे अच्छा नहीं समझता।

और, समस्त शास्त्रों का भी सार यही है कि 'भगवान की जिस प्रकार प्रसन्नता बनी रहे, वैसा ही आचरण करना चाहिए।' और, जिसमें भगवान

की प्रसन्नता हो ऐसा जो न करे, तो भगवान के मार्ग से उसका पतन ही समझ लेना चाहिए। और, जिसको भगवान तथा भगवान के भक्त का संग उपलब्ध है और जिस पर भगवान की प्रसन्नता बनी हुई है, तो वह मृत्युलोक में रहता हुआ भी भगवान के धाम में ही बैठा है। क्योंकि जो पुरुष सन्त की सेवा करता है और भगवान का कृपापात्र बना है, वह भगवान के समीप ही निवास करेगा। यदि कोई भगवान के धाम में रहता हो, लेकिन उस पर भगवान की प्रसन्नता नहीं है तथा उसे भगवान के भक्त से ईर्ष्या है, तो वह भक्त भगवान के धाम से भी अवश्य ही गिर जाएगा। इसलिए, हमें तो भगवान की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए जन्म-जन्मान्तर तक भगवान के भक्त की ही सेवा करनी है, इस प्रकार जैसा हमारा निश्चय है, वैसा ही निश्चय आपको भी करना चाहिए।'

23 : गढडा मध्य 41 : अहंकार-रहित सेवा

उस समय श्रीजीमहाराज अपने भक्तजनों को उपदेश देते हुए बोले कि 'जिसे परमेश्वर को भजना हो, उसे यदि भगवान अथवा भगवान के भक्त की सेवा-चाकरी करने का अवसर मिले, तो अपना बड़ा भाग्य मानकर सेवा करनी चाहिए। वह सेवा भी भगवान की प्रसन्नता के हेतु एवं अपने आत्मकल्याण के लिए भक्तिपूर्वक करनी चाहिए, किन्तु कोई अपनी प्रशंसा करे, ऐसी आशा से सेवा नहीं करनी चाहिए। और, मनुष्य का ऐसा स्वभाव है कि जिसमें स्वयं को मान मिले, वही करना अच्छा लगता है। बिना मान (अहंकार) के भगवान की अकेली भक्ति करना भी अच्छा नहीं लगता। जैसे श्वान सूखी हड्डी

को एकान्त में ले जाकर उसे दाँतों से चबाता है। उससे उसका मुँह छिल जाता है और उस खून से सनी हुई हड्डी को चाटकर वह प्रसन्न होता है, परन्तु वह मूर्ख यह नहीं जानता कि 'यह तो मेरे ही मुँह का खून है, जिसमें मैं स्वाद मानता हूँ।' वैसे ही भगवान का भक्त हो, फिर भी वह मानरूपी हड्डी को छोड़ नहीं पाता। वास्तव में वह जो भी साधनाएँ करता है, वह मान के वश में होकर ही करता है। केवल भगवान की भक्ति मानकर भगवान की प्रसन्नता के लिए वह कोई साधना नहीं करता। यदि वह भगवान की भक्ति करता है, और उसमें भी जब उसे मान का स्वाद आता है तभी करता है, परन्तु केवल भगवान की प्रसन्नता के लिए नहीं करता। वास्तव में निर्मानभाव से एकमात्र भगवान की प्रसन्नता के लिए भगवान की भक्ति तो रतनजी और मियांजी जैसे कोई विरले पुरुष ही करते होंगे; लेकिन, दूसरों से मानरूपी स्वाद का

त्याग हो ही नहीं सकता।' इस पर मुक्तानंद स्वामी ने तुलसीदास की यह साखी कही :

'कनक तज्यो कामिनी तज्यो, तज्यो धातु को संग।
तुलसी लघु भोजन करे, जिए मान के रंग॥'

यह साखी सुनकर श्रीजीमहाराज बोले कि 'जीवात्मा को मान में से जैसा स्वाद आता है, वैसा तो उसे अन्य किसी पदार्थ से नहीं आता। इसलिए, जो मनुष्य मान का परित्याग करके भगवान का भजन करता है, उसे समस्त हरिभक्तों में अतिशय महान हरिभक्त समझना चाहिए।'

24 : लोया 6 : संग-शुद्धि

श्रीजीमहाराज ने पुनः पूछा कि 'धर्म सम्बंधी साधनों में ऐसा कौन-सा साधन है, जो रखने से समस्त धर्म रहते हैं तथा भगवान सम्बंधी भजन, स्मरण, कीर्तन और वार्ता आदि साधनों में ऐसा एक साधन कौन-सा है कि आपत्काल में समस्त

साधनों के चले जाने पर इस एक ही साधन के रहने पर सभी साधन अक्षुण्ण बने रहते हैं?' इस प्रश्न का उत्तर भी उन्होंने स्वयमेव दिया, 'धर्म सम्बंधी साधनों में यदि एक निष्काम वर्तमान (ब्रह्मचर्य) बना रहे, तो समस्त साधन स्वतः सुलभ हो जाते हैं। भगवान सम्बंधी साधन में यदि भगवान के स्वरूप का निश्चय रहे, तो सभी साधन अपने आप चले आते हैं।'

फिर श्रीजीमहाराज ने प्रश्न पूछा कि 'कैसी मति को सुदृढ़ रखने से कल्याण होता है और उस मति में परिवर्तन करते हैं, तो बुरा होता है? तथा कैसी मति को बारंबार परिवर्तन करने पर हित होता है और उस मति को बारबार परिवर्तन न करने से बुरा होता है?' तब श्रीजीमहाराज ने इस प्रश्न का भी स्वयं उत्तर दिया कि 'भगवान के स्वरूप के निश्चय सम्बंधी मति को कभी भी विचलित नहीं होने देना चाहिए। भगवान के माहात्म्य को सुनकर

बार-बार उसे पुष्ट करते रहने से ही कल्याण होता है। और भगवान के स्वरूप के निश्चय को बार-बार बदले जाने से भक्त का बुरा ही होता है। तथा, अपने मन से स्वयं निश्चय किया हो कि 'मुझे ऐसा करना है,' उस मति को सन्त के वचन से बार-बार बदल देना चाहिए तथा सन्त यह कहें कि 'यहाँ नहीं बैठना चाहिए और यह नहीं करना चाहिए, तो उस स्थान पर न तो बैठना चाहिए और न तो वैसा काम ही करना चाहिए। इस प्रकार मति को बदलते रहने से कल्याण होता है और मनमानी करने से बुरा होता है।'

25 : गढडा मध्य 51 : आत्मसत्तारूप रहने के लक्षण

अतः कोई चाहे जितना निर्गुण हो और आत्मसत्तारूप से रहता हो, उसे यदि अशुभ देशकालादि का योग उपस्थित हो गया, तो उसके अन्तःकरण में दुःख अवश्य होगा।

अतः सत्पुरुष द्वारा निर्धारित मर्यादाओं का लोप करके कोई भी सुखी नहीं हो सकता। इसलिए, जितने भी त्यागी हैं उन्हें त्यागियों के धर्मानुसार आचरण करना, गृहस्थ हरिभक्तों को गृहस्थ धर्म के अनुसार बरतना और हरिभक्त स्त्रियों को नारियों के धर्मानुसार आचरण करना चाहिए। यदि निर्धारित मर्यादाओं से न्यून आचरण किया तो भी सुख नहीं होता, और उन मर्यादाओं से अधिक आचरण किया गया, तो भी सुख नहीं मिलता। क्योंकि परमेश्वर द्वारा प्रतिपादित धर्मानुसार ही ग्रन्थ में लिखा गया होता है, तथा मर्यादापूर्ण आचरण ऐसा होता है कि पालन करनेवालों को किसी प्रकार की बाधा उपस्थित नहीं होती एवं उस धर्म का आसानी से पालन भी किया जा सकता है। अतः कोई इसमें न्यूनाधिक आचरण करने का प्रयास करेगा, तो वह अवश्य दुःखी होगा। इसलिए, जो सत्पुरुष की आज्ञा के

अनुसार रहता हो, वही शुभ देशकालादि में रहा है। परंतु जिसने सत्पुरुष की आज्ञा के विपरीत आचरण किया, वही उसको बुरे देश-कालादि का संग लग चुका है। अतः सत्पुरुष की आज्ञा के अनुसार आचरण करनेवाला ही आत्मसत्तारूप में रहा है।'

26 : गढडा मध्य 16 : स्वरूपनिष्ठा एवं धर्मनिष्ठा

फिर मुक्तानन्द स्वामी ने प्रश्न पूछा कि 'विषयों की ओर इन्द्रियों के तीक्ष्ण वेग को मिटाने का क्या उपाय है?'

तब श्रीजीमहाराज बोले कि 'इन्द्रियों की तीक्ष्ण विषयोन्मुखता को मिटाने का यही उपाय है कि परमेश्वर ने त्यागी तथा गृहस्थों के लिए जिन नियमों का प्रतिपादन किया है, उनके अनुसार यदि सभी इन्द्रियों पर बलपूर्वक अंकुश रखा जाए, तो

सहज ही इन्द्रियों की तीक्ष्णता मिट सकती है। जब श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसना तथा घ्राणेन्द्रियों (पाँच ज्ञानेन्द्रियों) को यदि कुमार्ग पर नहीं जाने दिया जाए, तो इन्द्रियों के आहार शुद्ध हो जाते हैं और बाद में अन्तःकरण भी शुद्ध हो जाता है। अतः वैराग्य का बल हो या न हो, तो भी यदि इन्द्रियों को वश में करके परमेश्वर के बताए गए नियमों में रखा जाए, तो जैसे तीव्र वैराग्य द्वारा विषय जीते जाते हैं, उससे भी नियम-पालन करनेवाला विशेष रूप से विषयों पर विजय प्राप्त कर सकता है। अतः परमेश्वर द्वारा प्रतिपादित नियमों को ही अत्यन्त दृढ़ करके रखें।'

27 : गढडा मध्य 35 : ज्वार की खौं और कल्याण का सरल उपाय

श्रीजीमहाराज बोले कि, 'और, जगत में एक बात होती है कि 'मन होय चंगा तो कठौती

में गंगा।' परन्तु यह बात मिथ्या है। क्योंकि चाहे कैसा भी समाधिनिष्ठ अथवा विचारवान पुरुष हो, फिर भी वह स्त्रियों का सहवास करने लगे, तो उसका धर्म किसी भी प्रकार से नहीं रह सकता। तथा चाहे कैसी ही धर्माचरणवाली स्त्री हो, उसका यदि परपुरुष के साथ सहवास हो जाए, तो उसका भी धर्म नहीं ही रहता। इस तरह स्त्री-पुरुष का परस्पर सहवास होने पर भी उनका धर्म रहे, ऐसी तो आशा ही नहीं रखनी चाहिए! यह बात सौ प्रतिशत सत्य ही है, इसमें किसी भी तरह का संशय नहीं रखना चाहिए।

28 : गढडा मध्य 33 : निष्काम व्रत

अतः श्रीजीमहाराज बोले कि 'किसी को यदि मात्र निष्काम व्रत में दृढ़ता हो, तो उसे इस लोक तथा परलोक में कभी-कहीं पर भी भगवान से पृथकता नहीं रहेगी तथा उस पर हमारे स्नेह में

भी कभी कमी नहीं होगी। और, यहाँ के हरिभक्तों में निष्काम व्रत के प्रति अतिशय दृढ़ता बनी हुई देखकर ही हम यहाँ टिके हुए हैं। जिसे निष्काम व्रत के प्रति अतिशय दृढ़ता बनी हुई है, वह चाहे हज़ार कोस दूर क्यों न हो, हम उसके पास ही हैं। परन्तु जिसे इस व्रत में शिथिलता है, वह हमारे पास रहते हुए भी हमसे एक लाख कोस दूर है! वास्तव में हमें निष्कामी भक्त के हाथ की गई सेवा ही प्रिय लगती है।

तब हरजी ठक्कर ने प्रश्न किया कि 'निष्काम व्रत (ब्रह्मचर्य) कौन-से उपाय से अतिशय सुदृढ़ हो सकता है?'

तब श्रीजीमहाराज बोले कि 'उसके लिए एक ही उपाय नहीं है। उसके लिए तो तीन उपाय हैं। जैसे हाँकनेवाला, बैल, पहिये, धुर, जुआ आदि सब कुछ मिलकर एक गाड़ी बनती है, वैसे ही निष्काम व्रत को सुदृढ़ बनाने के लिए भी

कुछेक सामग्री की आवश्यकता रहती है। उसमें भी तीन उपाय अत्यन्त मुख्य हैं। उनमें से सबसे पहला उपाय है, मन को वश में करना। मन में निरन्तर ऐसा मनन करें कि 'मैं आत्मा हूँ, देह नहीं' तथा उसको भगवान की कथा-श्रवणादि नवधा भक्ति में निरन्तर जोड़े रखना! किन्तु क्षणमात्र के लिए भी उसे बेकार न रहने देना!

29 : गढडा मध्य 60 : विक्षेप मिटाना तथा पक्ष रखना

और, जिसे भगवान के भक्त का हितकारी वचन भी बाण की तरह हृदय में चुभता हो तथा वैर-भाव की ऐसी ग्रंथि पड़ जाए, जो उसके जीवित रहने तक वह नष्ट न हो पाए; ऐसा जो चांडाल-सदृश जीव हो, वह यदि धर्मयुक्त, त्यागयुक्त तथा तपस्वी भी क्यों न हो, उसका सब कुछ वृथा है। इसके अतिरिक्त अन्य भी कोटि

उपाय क्यों न करे, पर उसकी आत्मा का कभी भी कल्याण नहीं होगा।

और, इस संसार में जैसे कोई स्त्री अपने पति तथा अन्य पुरुष के प्रति समान रूप से स्नेह-भाव रखती हो, तो उसे वेश्या की भाँति दुष्ट स्त्री कहा जाता है; वैसे ही इस संसार में जो पुरुष ऐसा कहता है कि 'अपने लिए तो सभी साधु एक समान हैं, इनमें से किसको अच्छा और किसको बुरा कहें?' जो ऐसी समझ रखता हो, वह यदि सत्संगी कहलाता है, तो भी उसे विमुख ही समझना चाहिए। कोई पुरुष ऐसा मानता है कि 'यदि हम कुछ उलटा-सुलटा बोलेंगे, तो लोग हमें गलत समझेंगे। इस प्रकार यदि कोई मनुष्य अपनी सज्जनता जताने के लिए भगवान या भगवान के भक्त के विरुद्ध किसी के अनुचित वचनों को सुनता रहता है, तो सत्संगी कहलाने पर भी उसे विमुख समझना चाहिए। और, जिस प्रकार अपने

सम्बंधियों, स्नेहीजनों अथवा माता-पिता के प्रति पक्षपात की भावना रहती है, वैसे ही भगवान के भक्त का भी पक्ष दृढ़तापूर्वक रखना चाहिए। और, यदि भगवान के भक्त के साथ किसी प्रकार का विक्षेप हो जाए, तो जल में लकीर की तरह उसको समाप्त करके, उसके साथ पुनः एकताबद्ध हो जाए किन्तु वैरभाव न रखे, वही भगवान का यथार्थ भक्त कहलाता है।'

30 : लोया 17 : स्तुति एवं निंदा

पश्चात् श्रीजीमहाराज अपनी इच्छा से बोले कि 'देखिये न, भगवान की माया का बल कैसा है! जिससे अत्यन्त ही विपरीत परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है। क्योंकि पहले तो कितना अच्छा दिखता हो, किन्तु बाद में वह बहुत बुरा हो जाता है।' इतना कहकर वे परमहंसों से पुनः बोले कि 'आज प्रश्न पूछिए तो वार्ता करें।'

तब नित्यानन्द स्वामी ने पूछा कि 'हे महाराज! पहले कोई अच्छा प्रतीत होता हो, और स्तुति करता हो, किन्तु बाद में वही निन्दा करने लगता है। अतः देश, काल, क्रिया, संग आदि की चाहे कितनी ही विषमता उत्पन्न हो जाए, परन्तु वह अच्छा ही बना रहे तथा किसी भी प्रकार से उसमें विपरीत मति उत्पन्न न हो, इसका कौन-सा उपाय हो सकता है?'

तब श्रीजीमहाराज बोले कि 'जिसे अपनी देह के प्रति अनादर हो, दृढ़ आत्मनिष्ठा हो, पंचविषयों में वैराग्य हो तथा माहात्म्य सहित भगवान का यथार्थ निश्चय हो, तो देशकालादि की चाहे जितनी विषमता हो जाए, फिर भी उसकी मति विपरीत नहीं होती। और, जो पुरुष देहाभिमानी हो, और पंचविषयों के प्रति उसे अतिशय अरुचि न हुई हो, तब यदि सन्त उन्हीं विषयों का खंडन करें, तो उसके मन में ऐसे बड़े

संत के प्रति भी असद्भाव उत्पन्न हो जाता है। इतना ही नहीं, भगवान के प्रति भी असद्भाव उत्पन्न हो जाता है। यदि भगवान का निश्चय यथार्थ हो, फिर भी अगर उन्हें पंचविषयों का अत्यंत अभाव न हो गया हो, और उनकी आसक्ति भी यथावत् हो, उस समय यदि मुक्तानंद स्वामी जैसे सन्त उन विषयों का खंडन करें, तो वह ऐसे बड़े सन्त का भी शस्त्र द्वारा शिरच्छेद करने-जैसा द्रोह करेगा।'

विभाग - 3

31 : अहमदाबाद - ७

श्रीजीमहाराज बोले कि, 'समस्त ब्रह्मांडों की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का कर्ता भी मैं ही हूँ, तथा असंख्य ब्रह्मांडों के असंख्य शिव, असंख्य ब्रह्मा, असंख्य कैलास, असंख्य वैकुंठ और गोलोक, ब्रह्मपुर एवं असंख्य करोड़ अन्य स्थल मेरे ही तेज से तेजोद्दीप्त हैं। मैं कैसा हूँ? यदि मैं अपने पैर के अँगूठे से पृथ्वी को हिला दूँ, तो असंख्य ब्रह्मांडों की पृथ्वी डिगने लग जाएगीं। मेरे तेज द्वारा ही सूर्य, चन्द्रमा तथा तारागण आदि तेजोमय बने हुए हैं। ऐसा जो मैं हूँ, वैसा मेरे सम्बंध में समझकर यदि निश्चय किया जाए, तो भगवान ऐसे मुझमें मन की वृत्ति स्थिर हो जाएगी और वह कभी भी व्यभिचरित

नहीं होगी। और, जो-जो जीव मेरी शरण में आए हैं, वे यदि ऐसा समझ लेंगे, तो मैं उन सबको मेरा सर्वोपरि धाम प्राप्त करा दूँगा तथा उन्हें अन्तर्यामी जैसा कर दूँगा, और उन्हें इतना सामर्थ्यवान बना दूँगा कि वे ब्रह्मांडों की उत्पत्ति आदि करने में समर्थ हो जाए।'

32 : गढडा अंत्य 16 : पतिव्रता स्त्री के समान भगवन्निष्ठा

तब श्रीजीमहाराज बोले कि 'भगवद्भक्त को भी भगवान में दृढ़ निष्ठा रखनी चाहिए और जिस रूप में स्वयं को भगवान के दर्शन हुए हों, उनके साथ जिसे पतिव्रता-सी दृढ़ प्रीति हो गई हो, उसे तो भगवान के अतिरिक्त अन्य बड़े-बड़े मुक्त साधुओं के प्रति भी प्रीति होती ही नहीं। और, अपने इष्टदेव के अन्य अवतारों के प्रति भी उसकी प्रीति नहीं होती। उसे केवल भगवान के

उस स्वरूप में ही प्रीति बनी रहती है, जिसकी उसे प्राप्ति हुई है। और ऐसा भक्त भगवान की मर्ज़ी अनुसार ही रहता है। तथा वह किसी अन्यों को जो कुछ माने, वह तो केवल इसी दृष्टि से मानता है कि वे भी भगवान के हैं।

इस प्रकार जिसको अपने इष्टदेव भगवान में पतिव्रता-सी दृढ़ भक्ति रहती है, वह अन्य कैसे भी गुणवान को देखे, परन्तु उसके साथ उसे स्नेह होता ही नहीं। जैसे हनुमानजी रघुनाथजी के भक्त रहे हैं। यद्यपि रामावतार के बाद भगवान के अन्य कितने ही अवतार हुए हैं, फिर भी हनुमानजी पतिव्रता के समान रामचन्द्रजी की ही भक्ति करते रहे हैं। भगवान के जिस भक्त की ऐसी ही एकनिष्ठा है, उसे पतिव्रता सदृश भक्ति कहा जाता है। जिसकी ऐसी एकनिष्ठा न हो, उसकी तो व्यभिचारिणी स्त्री के समान भक्ति कही जाएगी।

अतः जिससे जानबूझ कर अपने पर कलंक मढ़ जाए ऐसी भक्ति कभी मत करना! भगवान के भक्त को सोच-समझकर पतिव्रता स्त्री के समान ही दृढ़ भक्ति करनी चाहिए।'

33 : गढडा प्रथम 21 : एकान्तिक धर्म, अक्षर के दो स्वरूप

श्रीजीमहाराज बोले कि, 'ऐसा जो एकान्तिक भक्त होता है, वह देह त्याग कर तथा माया के समस्त भावों से मुक्त होकर अर्चिमार्ग द्वारा भगवान के अक्षरधाम में जाता है। उस अक्षर के दो स्वरूप हैं। इनमें से एक तो निराकार एकरस चैतन्य है। उसे चिदाकाश और ब्रह्मधाम कहते हैं तथा वह अक्षर दूसरे रूप से पुरुषोत्तम नारायण की सेवा में रहता है। उस अक्षरधाम को पानेवाला भक्त भी अक्षरब्रह्म

के साधर्म्य को प्राप्त होता है और भगवान की सेवा में निरंतर रहता है। और उस अक्षरधाम में श्रीकृष्ण पुरुषोत्तम नारायण सदैव विराजमान रहते हैं। और उस अक्षरधाम में अक्षर के साधर्म्य-भाव को प्राप्त हुए ऐसे अनन्त-कोटि मुक्त रह रहे हैं, जो सभी पुरुषोत्तम के दास होकर बरतते हैं। और पुरुषोत्तम नारायण उन सबके स्वामी तथा अनन्तकोटि ब्रह्मांडों के राजाधिराज हैं। इसलिए, हमारे समस्त सत्संगियों को केवल यही निश्चय करना चाहिए कि 'हमें भी इन अक्षररूप मुक्तों की पंक्ति में मिलना है और अक्षरधाम में जाकर भगवान की सेवा में निरंतर उपस्थित रहना है, किन्तु नाशवान एवं तुच्छ मायिक सुख की इच्छा नहीं करनी है और इसमें किसी भी स्थान के प्रति लुब्ध नहीं होना है।''

34 : गढडा मध्य 25 : वासनिक त्यागी, और निर्वासनिक गृहस्थ

तत्पश्चात् मुक्तानन्द स्वामी ने पूछा कि 'ऐसी दृढ़ वासना को टालने की जिसकी इच्छा हो, तो उसे कौन-सा उपाय करना चाहिए?' तब श्रीजी-महाराज बोले कि 'जैसे उकाखाचर को सन्त की सेवा करने का व्यसन पड़ चुका है, वैसा ही भगवान तथा भगवान के सन्त की सेवा करने का जिसे व्यसन हो जाए और उसके बिना एक क्षण भी न रहा जाए, तो उसके अन्तःकरण की मलिन वासना पूर्णतः नष्ट हो जाती है।'

फिर स्वयंप्रकाशानन्द स्वामी ने प्रश्न पूछा कि 'हे महाराज! ऐसा कौन-सा साधन है कि जिससे भगवान अतिशय प्रसन्न हो जाएँ?'

तब श्रीजीमहाराज बोले कि 'घर में केवल एकाध मन अन्न मिलता हो, और उस समय

सन्त के प्रति जैसी प्रीति तथा दीनता हो, वैसी ही दीनता और अधीनता, जब उसे एक गाँव का राज्य मिले या पाँच गाँव का राज्य मिले अथवा पचास गाँव का राज्य मिले या सौ गाँव का राज्य मिले अथवा समस्त पृथ्वी का भी राज्य मिल जाए; फिर भी पूर्वकाल में जैसे सन्त के समक्ष अतिशय प्रीतिपूर्वक दीन-अधीन था, वैसा ही दीन-अधीन बना रहे; वैसे ही इन्द्रलोक एवं ब्रह्मलोक का राज्य प्राप्त होने पर भी सन्त के प्रति अपनी दीनता एवं अधीनता की भावना बनाए रखे। ऐसे गृहस्थ पर भगवान की अतिशय प्रसन्नता होती है। और, त्यागी भक्त भी यदि पहले गरीब अवस्था में सभी सन्तों की सेवा-चाकरी करता हो, वैसी ही सेवा-चाकरी स्वयं को भगवान सदृश ऐश्वर्य प्राप्त होने पर भी करता रहे, किन्तु साधुओं के साथ पैतृक दावा पेश न करे और किसी के साथ प्रतिस्पर्धी का भाव न रखे। ऐसे लक्षणवाले साधु पर भगवान अतिशय प्रसन्न हो जाते हैं।'

35 : गढडा मध्य 57 : आत्मनिष्ठा का प्रयोजन और सच्चा त्याग

श्रीजीमहाराज बोले कि, 'ऐसे भगवान को छोड़कर जो अन्य पदार्थों से प्रीति करता है, वह तो अतिशय तुच्छ बुद्धिवाला है। जैसे कुत्ता सूखी हड्डी को एकान्त में ले जाकर उसे चबाता है और उसमें सुख मानता है, वैसे ही मूर्ख जीव दुःख में सुख मानकर तुच्छ पदार्थों में आसक्त रहता है।

और, यदि कोई भगवान का भक्त कहा जाता हो, परन्तु वह यदि भगवान की अपेक्षा अन्य पदार्थों से अधिक लगाव रखता हो, तो वह केवल बिल्ली भगत ही है। तथा जो भगवान का यथार्थ भक्त होता है, उसे तो भगवान के सिवा अन्य कोई भी पदार्थ प्रिय ही नहीं लगता। भगवान का जो भक्त ज्ञान, वैराग्य, भक्ति एवं धर्म से युक्त है, वह यह समझता है कि जो शूरवीर है, वह युद्ध के समय शत्रु के सम्मुख जाकर चुनौती देता है,

लेकिन शत्रु से भयभीत नहीं होता। और, वही तो सच्चा शूरवीर कहा जाता है। यदि शूरवीर हो, परन्तु युद्ध के समय काम नहीं आया, अथवा अपने पास अत्यधिक धन हो, परन्तु वह समयपर खर्च करने पर उपयोग में नहीं आया, तो दोनों ही व्यर्थ एवं निरर्थक हैं। उसी प्रकार मुझे भगवान मिले हैं और जो कोई जीव मेरा संग करता है, उसके आगे मैं यदि कल्याण की बातें न करूँ, तो मेरे ज्ञान का क्या प्रयोजन?' ऐसा विचार करके, उपदेश करते समय यदि कोई मुश्किलें खड़ी हो गईं तो भी परमेश्वर की बात करने में कभी कायरता नहीं रखनी चाहिए।'

36 : गढडा प्रथम 30 : संकल्पों के घाव से निवृत्त होने का उपाय

श्रीजीमहाराज बोले कि, 'सत्संग में हो रही भगवान की वार्ता को हृदय में धारे और उसका

चिन्तन करे, तो इस सत्संग का प्रताप ऐसा है कि उसे जिस गुण के द्वारा संकल्प होते हों उन संकल्पों की निवृत्ति हो जाती है और निरुत्थान होकर परमेश्वर के स्वरूप का अखंड चिन्तन होने लगता है। बिना सत्संग के कोटि प्रकार की साधना करने पर भी संकल्प तथा रजोगुण आदि गुणों से छुटकारा नहीं मिल पाता। यदि कोई निष्कपट भाव से सत्संग करता है और परमेश्वर की बात को हृदयस्थ करके उस पर विचार करता है, तो उसके मलिन संकल्प नष्ट हो जाते हैं। अत: सत्संग का प्रताप अतिशय महान है। अन्य कोई भी साधन सत्संग के समान महिमामय नहीं होते; क्योंकि अन्य किसी भी साधना से जिस संकल्प की निवृत्ति नहीं होती, उसकी निवृत्ति सत्संग में होती है। इस कारण को दृष्टिगत रखते हुए, जिसे रजोगुण सम्बंधी मलिन संकल्प नष्ट करने हों, उसे मन, कर्म तथा वचन द्वारा निष्कपट भाव से

सत्संग करना चाहिए, तभी सत्संग के प्रताप से उन संकल्पों की निवृत्ति हो जाएगी।'

37 : गढडा अंत्य 12 : करामात !

उस समय श्रीजीमहाराज ने अपने भक्तजनों को शिक्षा देने के उद्देश्य से यह वार्ता की कि 'जो भक्त आत्मकल्याण की इच्छा रखता है, उसे किसी भी प्रकार का अभिमान नहीं करना चाहिए कि मैंने उच्च कुल में जन्म लिया है या मैं धनाढ्य हूँ अथवा रूपवान हूँ या पंडित हूँ। इस प्रकार का अभिमान मन में नहीं रखना चाहिए और गरीब सत्संगी का भी दासानुदास होकर रहना चाहिए। और, जो पुरुष भगवान के भक्त में दोष देखता हो, वह कदाचित् स्वयं को सत्संगी भक्त कहलाता हो परन्तु उसे हड़काये कुत्ते के समान समझना चाहिए! जैसे किसी को हड़काये कुत्ते ने काट लिया, तो उसे भी हड़क

उठती है। उसी तरह जिसने भगवान और भगवान के भक्त का अवगुण लिया हो, उसके साथ स्नेह रखनेवाला अथवा उसकी बात सुननेवाला भी भगवान से विमुख-सा हो जाता है। और, जैसे क्षयरोग किसी भी औषधि से नहीं मिट पाता, वैसे ही जिसे भगवान तथा भगवान के भक्त में अवगुण मान लिया हो, उसके हृदय से आसुरी बुद्धि कभी भी नहीं मिट सकती। और, किसी ने अगणित ब्रह्महत्या की हों, अगणित बालहत्या की हों, अनन्त स्त्रीहत्या की हों, अगणित गोहत्या की हों तथा अनेकबार गुरुपत्नी के साथ व्यभिचार किया हो, इन सभी पापों से मुक्त होने के उपाय शास्त्रों में बताए गए हैं, किन्तु भगवान तथा भगवान के भक्त के प्रति अवगुण देखनेवाले के लिए उस पाप से छुटकारा पाने का उपाय किसी भी शास्त्र में नहीं बताया गया है। यद्यपि विषपान करने अथवा समुद्र में गिरने या पर्वत पर से गिर जाने अथवा

किसी राक्षस द्वारा खा लिये जाने से मनुष्य को केवल एक ही बार मरना पड़ता है, परन्तु भगवान तथा भगवान के भक्त का द्रोही होने पर उसे अनन्त कोटि कल्पों तक मरना और जन्म लेना पड़ता है। और, यद्यपि रोगग्रस्त होने से शरीर छूट जाए, अथवा किसी शत्रु द्वारा देह का नाश कर दिया जाए, परन्तु आत्मा का नाश नहीं होता; परन्तु भगवान और भगवान के भक्त के द्रोही का तो जीव ही नष्ट हो जाता है।'

38 : गढडा मध्य 27 : बड़े सन्त की प्रसन्नता का कारण मलिन वासना का त्याग

श्रीजीमहाराज बोले कि, 'हमने और भी विचार कर देखा है कि जो अतिशय त्यागमय जीवन रखता है अथवा दया रखता है, उससे भी भगवान की भक्ति नहीं हो सकती। ऐसी दशा

में उपासना का भी भंग होता है। पूर्वकाल में जो अतिशय त्यागी पुरुष हुए हैं, उनके मार्ग में उपासना का नाश हो गया है। इसलिए, हमने यह विचार करके परमेश्वर की उपासना रखने के लिए त्याग के पक्ष को गौण करके भगवान के मन्दिर बनवाए हैं। उनमें यदि त्याग थोड़ा रहेगा, तो भी उपासना तो बनी रहेगी, और उपासना से अधिकाधिक जीवों का कल्याण होगा।'

39 : गढडा मध्य 7 : दरिद्र के दृष्टांत से विकारों का उन्मूलन

ऐसे समय में मुक्तानन्द स्वामी ने श्रीजीमहाराज से प्रश्न पूछा कि 'भगवान के भक्त के मन में ऐसा विचार रहता है, कि भगवान के भजन में विघ्न डालनेवाला ऐसा कोई भी स्वभाव मुझे नहीं रखना है, फिर भी अनुचित स्वभाव रह जाते हैं, इसका क्या कारण है ?'

तब श्रीजीमहाराज बोले कि 'जिसके हृदय में वैराग्य की दुर्बलता होती है, उसे स्वभावों को टालने की भावना रहते हुए भी वह स्वभाव को नहीं मिटा पाता। जैसे दरिद्र मनुष्य स्वादिष्ट भोजन को तथा अच्छे-अच्छे वस्त्रों की चाह रखे, तो क्या ऐसी वस्तुएँ उसे मिलेंगी? वैसे ही वैराग्यहीन व्यक्ति के हृदय में इच्छा भले ही रहे, परन्तु साधुता के गुण सिद्ध होना तो बहुत ही दुर्लभ है।'

तब मुक्तानन्द स्वामी ने प्रश्न पूछा कि 'जिसे वैराग्य की दृढ़ता न हो, उसे ऐसा कौन-सा उपाय करना चाहिए, जिससे कि उसके विकार मिट जाएँ?'

श्रीजीमहाराज बोले कि 'वैराग्यहीन पुरुष यदि किसी बड़े सन्त की अत्यंत सेवा करे तथा परमेश्वर की आज्ञा में यथार्थरूप से प्रयास-रत रहे, तो परमेश्वर भी उस पर कृपादृष्टि से देखने लगते हैं कि 'यह बेचारा वैराग्यरहित है और

उसे काम-क्रोधादि विकार अत्यन्त पीड़ा दे रहे हैं, अतः उसके समस्त विकार मिट जाएँ!' तब परमेश्वर की कृपा से उसके विकार तत्काल मिट जाते हैं। अन्यथा, अनेक साधनों के द्वारा दीर्घकाल तक साधना करते रहने पर भी इस जन्म में अथवा दूसरे जन्म में मिटते हैं। तत्काल समस्त विकारों का उन्मूलन तो केवल परमेश्वर की कृपा से ही सम्भव हो सकता है।'

40 : गढडा मध्य 22 : शूरवीरता और अंतर्दृष्टि

उस समय श्रीजीमहाराज साधुओं से बोले कि 'एक वार्ता कहते हैं, उसे सुनिए। जब दो सेनाएँ युद्ध के लिए तैयार खड़ी हुई हों तथा दोनों के निशान आमने-सामने लगे हों, तब दोनों पक्षों में से प्रत्येक को यही लक्ष्य रहता है कि 'हमें अपना निशान दूसरे पक्ष के निशान के स्थान में

लगा देना है और उसका निशान मिटा देना है। परन्तु, कोई पक्ष ऐसा विचार नहीं करता कि जब उसका निशान लेने के लिए जाएँगे, तब तक कितने ही सिर धड़ से अलग हो जाएँगे और खून की नदी बहने लगेगी।' इस प्रकार का भय नहीं रहता, क्योंकि वे शूरवीर हैं, अतः उन्हें मरने का डर होता ही नहीं। और, जो कायर होते हैं वे भागने के हज़ारों उपाय करते रहते हैं; तथा यह भी सोचते हैं कि यदि 'अपनी सेना जीत गई तो सभी के धन और हथियारों को लूट लेंगे।' जबकि दोनों पक्षों के राजाओं के शूरवीरों को न तो मरने का ही डर रहता है और न माल लूटने का ही लोभ होता है। उनका तो एक ही लक्ष्य रहता है कि किसी भी कीमत पर दूसरी सेना का निशान हथिया लेना है और हमें ही विजय को पाना है।'

इस दृष्टान्त का सिद्धान्त यह है कि निशान के स्थान पर भगवान का धाम है और राजा के

शूरवीरों के स्थान पर भगवान के दृढ़ भक्त हैं। उन्हें तो इस संसार में मान मिले या अपमान मिले, अपनी देह को सुख मिले या दुःख मिले, अपना शरीर रोगग्रस्त रहे या निरोगी रहे, अपनी देह जिन्दा रहे या किसी कारण उसकी मोत हो जाए – किसी भी स्थिति में उन भक्तों के हृदय में संकल्प नहीं होता कि 'हमें इतना दुःख झेलना होगा या इतना सुख प्राप्त होगा!' इन दोनों में से किसी भी तरह का विचार या संकल्प उनके मन में नहीं होता। ऐसे भक्त-जनों के हृदय में यही एक दृढ़ निश्चय होता है कि 'इस देह के द्वारा भगवान के धाम में ही निवास करना है, परन्तु बीच में कहीं भी आसक्त नहीं होना है।'

41 : पंचाणा 1 : सुख की मीमांसा

श्रीजीमहाराज बोले कि, 'इसलिए, मुमुक्षु अपने हृदय में यह विचार करे कि 'मैं भगवान से जितना दूरी बढ़ाता रहूँगा, उतना ही मुझे दुःख

मिलेगा और मैं महादु:खी हो जाऊँगा। जबकि भगवान के साथ थोड़ा सम्बंध रहनेमात्र से ही ऐसा सुख मिलता रहता है, तो मुझे भगवान के साथ अधिकाधिक सम्बंध बनाए रखना है। और यदि मैं उनके साथ अतिशय सम्बंध बनाए रखूँगा, तो मुझे उत्कृष्ट सुख की प्राप्ति होगी।' ऐसा विचार करके, और भगवान सम्बंधी सुख का लोभ रखकर जो भक्त भगवान के साथ अतिशय सम्बंध रखने का उपाय करता रहता है, उसे ही बुद्धिमान कहा जाता है। तथा पशु के सुख से मनुष्य में अधिक सुख है, और उससे अधिक राजा का सुख है, और उससे अधिक देवता का सुख है, और उससे अधिक इन्द्र का सुख है, और उससे अधिक बृहस्पति का, तथा उससे अधिक ब्रह्मा का, उससे अधिक वैकुंठलोक का, और उससे अधिक गोलोक का सुख है और गोलोक से भी भगवान के अक्षरधाम का सुख अत्यन्त ही अधिक है!'

42 : गढडा मध्य 47 : पंचविषयों में आसक्ति

श्रीजीमहाराज बोले कि, 'क्योंकि यह सभा तो बदरिकाश्रम तथा श्वेतद्वीप में आयोजित सभा जैसी है। वहाँ बैठकर जब मलिन वासना नहीं टली, तब उसको मिटाने के लिए दूसरा स्थान कहाँ मिलेगा? और पंचविषयों को अपनी जीवात्मा ने देव-मनुष्यादिक अनेक देहों में ठीक तरह से भोगा है, फिर भी उसे अभी तक उन विषयों से तृप्ति नहीं हुई, तो अब भगवान का भक्त होकर एक वर्ष, दो वर्ष या पाँच वर्षों तक विषयों को भोगकर भी विषयेच्छा पूर्ण नहीं हो पाएगी। जैसे पाताल तक पृथ्वी फट चुकी हो, उसे यदि पानी से भरा जाए, तो वह कभी भी नहीं भरेगी, उसी प्रकार इन्द्रियों को भी विषयों से कभी भी तृप्ति नहीं

हुई है, और आगे तृप्ति होगी भी नहीं। इसलिए, अब विषयों के प्रति आसक्ति का परित्याग करके साधु यदि डाँटकर ही क्यों न कहें, उनका गुण ग्रहण करना, परन्तु उनमें अवगुण मत देखना। जैसे मुक्तानंद स्वामी ने अपने कीर्तन में भी कहा है कि –

'सूली ऊपर शयन करावे, तो भी साधु के संग रहिये रे।'

अर्थात् यदि सूली पर चढ़ना पड़े, ऐसी स्थिति में भी हमें संत की संगत नहीं छोड़नी चाहिए। अतः ऐसा अवसर प्राप्त हुआ है, तो अशुभ वासना को मिटाकर ही मरना, किन्तु अशुभ वासना के साथ नहीं मरना है। और, भक्त को ऐसी ही वासना रखनी चाहिए कि 'इस देह से निकलकर नारद–सनकादि और शुकजी के सदृश ब्रह्मरूप होकर भगवान की भक्ति करनी है।'

43 : गढडा प्रथम 18 : पंचविषयों का खण्डन, हवेली का दृष्टांत

श्रीजीमहाराज बोले कि, 'और पाँच इन्द्रियों द्वारा जीव जो आहार करता है, वह यदि शुद्ध आहार करेगा तो अन्त:करण शुद्ध होगा और अन्त:करण शुद्ध होने से निरंतर भगवान की स्मृति बनी रहेगी। यदि पंचेन्द्रियों के आहार में एक भी इन्द्रिय का आहार मलिन रहा, तो अन्त:करण भी मलिन हो जाता है। इसलिए, भगवद्भक्त को भगवान के भजन में जो भी कोई विक्षेप पड़ता है, उसका कारण पाँचों इन्द्रियों के विषय ही हैं, परन्तु अन्त:करण नहीं है!

और यह जीव जैसी संगति करता है, वैसा ही उसका अन्त:करण हो जाता है। यदि वह जीव विषयी जीवों के समाज में बैठा हो और वहाँ सुन्दर सात मंजिलवाली हवेली हो, उसमें सुन्दर

शीशे जड़े हुए हों, सुन्दर बिछौने बिछे हुए हों, नानाप्रकार के आभूषणों और वस्त्रों से सुसज्जित होकर विषयीजन बैठे हों और वे एक दूसरे को शराब के जाम पिला रहे हों, शराब से भरी कितनी ही बोतलें पड़ी हों, वेश्याएँ नूपुर-झंकार के साथ थेई-थेई नृत्य कर रही हों, नाना प्रकार के बाजे बज रहे हों, ऐसे वातावरण में जाकर यदि कोई (धर्मिष्ठ भी) बैठ गया, तो उसका अन्तःकरण भी दूसरी तरह का (अशुद्ध, विकारी) हो जाता है। दूसरी ओर घासफूस की झोंपड़ी हो और उसमें फटी गूदड़ीवाले परमहंस की सभा हो रही हो तथा धर्म, ज्ञान, वैराग्य और भक्ति के साथ भगवत्कथा हो रही हो, उस समय वहाँ जाकर यदि कोई पुरुष (दुराचारी भी) बैठ गया, तो उस समय उसका अन्तःकरण दूसरी ही तरह का (विशुद्ध) हो जाता है।

इसलिए, सत्संग और कुसंग के कारण अन्तःकरण की कैसी स्थिति हो जाती है, वह तो

विचार करने पर ही ज्ञात हो सकता है, किन्तु मूर्ख को तो कुछ ज्ञात नहीं होता।'

44 : गढडा प्रथम 20 : अज्ञानियों में अतिशय अज्ञानी कौन ?

उस समय स्वामी श्रीसहजानन्दजी महाराज बोले कि 'सुनिये, सबसे एक प्रश्न पूछते हैं।' तब समस्त हरिभक्तों ने हाथ जोड़कर निवेदन किया, 'पूछिये।'

तब श्रीजीमहाराज बोले, 'अज्ञानियों में अतिशय अज्ञानी कौन है ?' यह सुनकर सब विचार करने लगे, परन्तु कोई भी उत्तर नहीं दे पाया। फिर श्रीजीमहाराज बोले, 'लीजिए, हम ही उत्तर देते हैं।' तब सभी ने आनन्दित होते हुए कहा कि 'हे महाराज! आपसे ही यथार्थ उत्तर हो सकेगा; कृपया कहिए।'

फिर श्रीजीमहाराज बोले कि 'इस देह में

रहनेवाला जीव, रूप और कुरूप को देखता है, बाल्यावस्था, युवावस्था तथा वृद्धावस्था को देखता है। इस प्रकार वह अनेक पदार्थों को देखता रहता है, परन्तु देखनेवाला स्वयं अपने आपको नहीं देखता, परंतु बाह्यदृष्टि से जगतभर के पदार्थों को देखता रहता है, बल्कि स्वयं को नहीं देखता, वही अज्ञानियों में अतिशय अज्ञानी है। जो अपने नेत्रों से अनेक प्रकार के रूपों का आस्वादन करता है, उसी तरह श्रोत्र, त्वक्, रसना तथा घ्राण इत्यादि इन्द्रियों द्वारा विषय-सुख का उपभोग करता है और उसी को जानता है। परन्तु, स्वयं न तो अपने सुख को भोगता है, और न तो अपने स्वरूप को भी पहचानता है, वही समस्त अज्ञानियों में अतिशय अज्ञानी है, और वही सभी पागलों में अतिशय पागल है, और वही मूर्खों में अतिशय मूर्ख है, तथा वही समस्त नीचों में अतिशय नीच है।'

45 : गढडा प्रथम 22 : भगवत्स्मरण के बिना प्रत्येक साधना शून्य

श्रीजीमहाराज बोले, 'मृदंग, सारंगी, सरोद तथा ताल आदि वाद्ययन्त्रों के साथ गाए जानेवाले कीर्तन के समय, यदि भगवान की स्मृति न रहे, तो जो कुछ गाया, वह अनगाया-सा ही रहता है। वैसे तो जगत में ऐसे कितने ही जीव हैं, जो भगवान का विस्मरण करके गाने-बजाने में लगे रहते हैं, तो भी उससे उनके मन में शान्ति नहीं हो पाती। इसलिए, भगवान के कीर्तन गायें, भगवन्नाम-रटन करें तथा नारायण-धुन आदि जो भी करें, भगवान की मूर्ति की स्मृति के साथ ही करें। और भजन करने के लिए बैठें तब तो अपनी चित्तवृत्ति भगवान में रखते ही हैं, परन्तु भजन से उठकर अन्य क्रिया करते हुए भगवान में वृत्ति नहीं रखते तो उनकी चित्तवृत्ति भजन में बैठने पर भी भगवान के स्वरूप में स्थिर

नहीं हो पाएगी। इसलिए, चलते-फिरते, खाते-पीते तथा समस्त क्रियाओं में भगवान के स्वरूप में वृत्ति रखने का अभ्यास करना चाहिए। ऐसा करते रहने पर वह भगवद्भजन के लिए बैठेगा, तो उस वक्त उसकी वृत्ति भगवान में स्थिर हो जाएगी। भगवान की ओर जिसका मन इस तरह लग गया तो कामकाज के समय भी उसकी वृत्ति भगवान में बनी रहेगी। परंतु जो गफ़लत में रहनेवाला हो, उसका मन तो भजन के समय भी भगवान में मन स्थिर नहीं रह पाएगा। इसलिए, भगवान के भक्त को सावधान होकर भगवान के स्वरूप में अपनी वृत्ति लगाए रखने का अभ्यास करते रहना।'

● ● ●

પ.પૂ. મહંતસ્વામી મહારાજનાં પ્રેરણાવચનો

યોગી બાપા આપ બધાને આવી રીતે
મુખપાઠ કરતા દર્શન કરે તો તરત પરત વાળી જાય
અને બોલી ઉઠે, "વાહ, વાહ, શાબાશ છે તમો બધાને!"

તો મુખપાઠની સ્વામી બાપાનો રાજીપો છે
એટલે કરોડોની કમાણી કહેવાય. તેમાંય વળી
ગુરુમુખી થઈએ તો કરોડ ગણું કુળ.

પૂર્વે ઘણાએ ઘાર્યો જાહેર કરી બતાવ્યું કે
તમે બધા એવું કરી શકો છો. તમારા ઘાર્યો જાહેર
થઈ શકશે.

મનમાં રાજીપાની ગેડય બેસી જવી જોઈએ.
આપ બધામાં અપાર શક્તિ છે. નાની અવસ્થા છે
એટલે ધારો તો નિશાન પાકી બતાવો.

સ્વયં કૈવલ્યજ્ઞાનદાતા ના ઘણાજ
હેતપૂર્વક જયશ્રી સ્વામિનારાયણ.

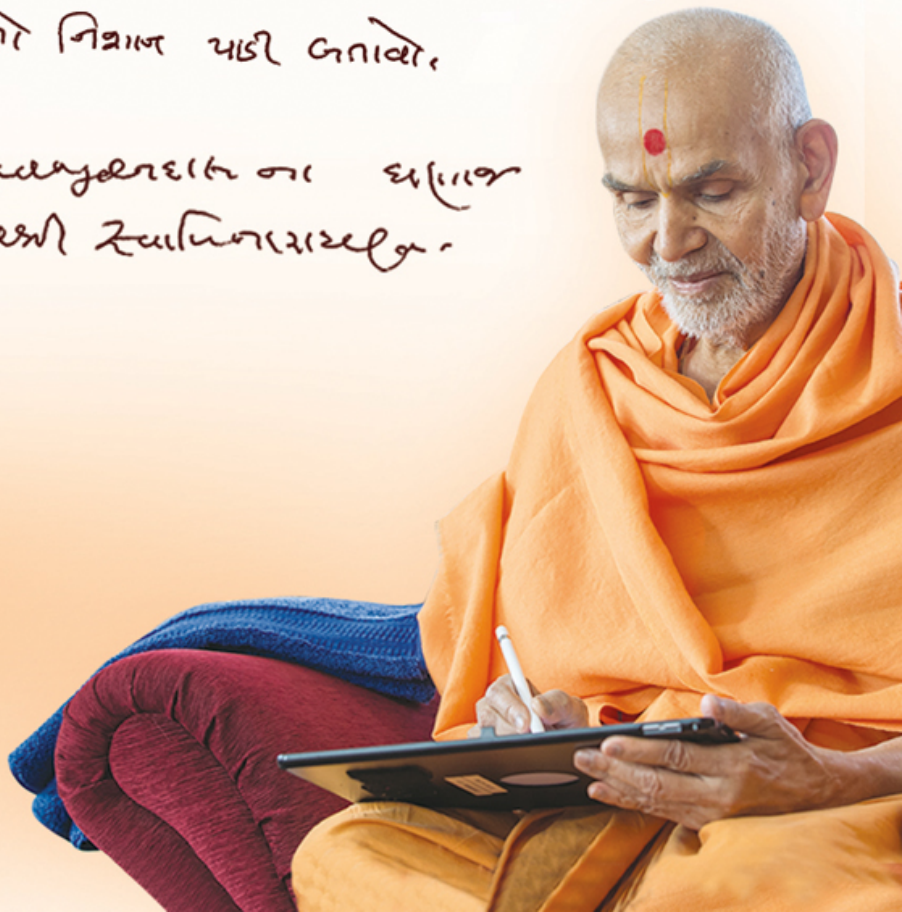

प.पू. महंतस्वामी महाराज के प्रेरणावचन

योगी बापा आप सबको इस तरह मुखपाठ करते दर्शन करे तो
आप पर बहोत प्रसन्न होंगे और बोल उठेंगे
''वाह, वाह, शाबाश, आप सभी को''।
मुखपाठ में स्वामी बापा की प्रसन्नता है
इसलिए यह तो करोडो की कमाई कहलाए।
उसमे भी गुरुमुखी होंगे तो करोड़ गुना फल प्राप्त होगा।
इस के पहले अनेकने अपेक्षा से ज्यादा कर दिखाया है,
आप सब ऐसा कर सकते है। आप की अपेक्षा से ज्यादा हो पायेगा।
मन में प्रसन्नता का विचार दृढ होना चाहिए।
आप सभी में अपार शक्ति है। कम उम्र है,
इसलिए जो तय करोगे वह सिद्ध कर पाओगे।

साधु केशवजीवनदास के
हेतपूर्वक जयश्री स्वामिनारायण

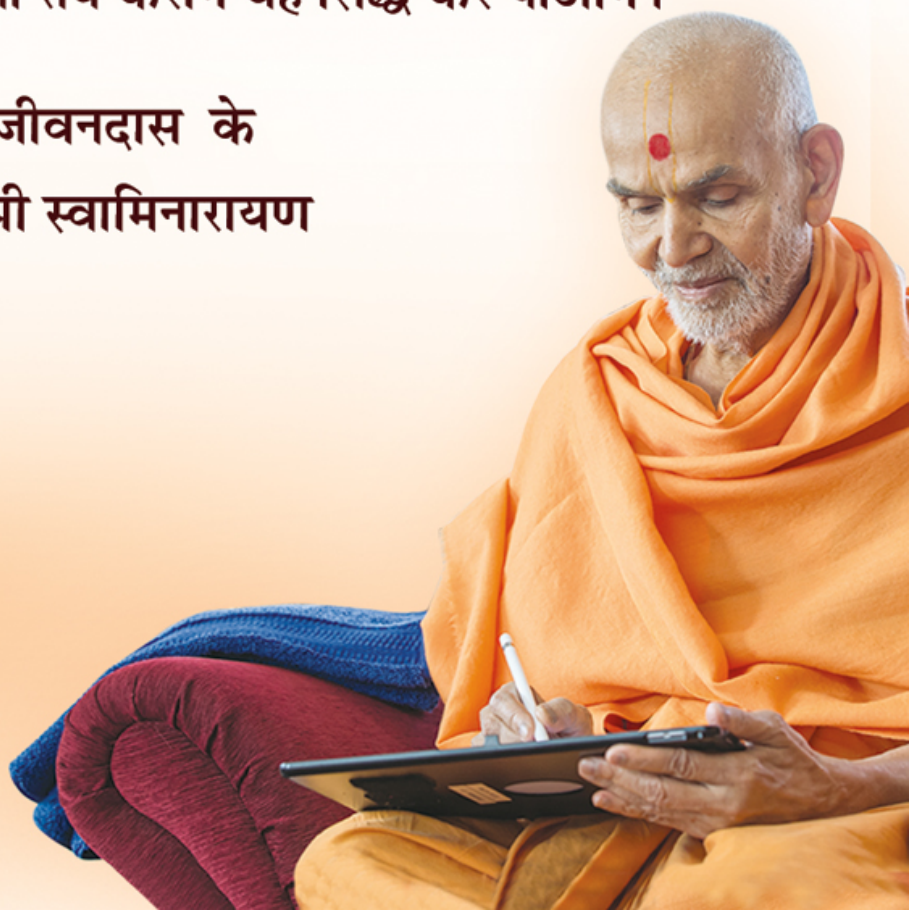

પ.પૂ. પ્રમુખસ્વામી મહારાજનાં પ્રેરણાવચનો

प.पू. प्रमुखस्वामी महाराज के प्रेरणावचन

योगीजी महाराज युवको को युवा अधिवेशन के लिए
बहुत प्रोत्साहित करते थे। आप सभी युवको सत्संग में आते है
तो आप को सत्संग ज्ञान होना आवश्यक है,
इस हेतु से ऐसे अधिवेशन का आयोजन होता है।
इसलिए जो भी स्पर्धाए है उस सभी की तैयारी ठीक से करे।
योगीजी महाराज को मुखपाठ बहुत पसंद था
तो उसकी तैयारी भी विशेष करे। जीतनी नियमितता होगी
उतना काम होगा, आलस छोड़कर पुरुषार्थ करने लगो।
रोज निश्चित समय इसके लिए निकालेंगे तो तैयारी अच्छी होगी।
सभी युवको को बल प्राप्त हो ऐसी महाराज, स्वामी,
शास्त्रीजी महाराज और योगीजी महाराज को प्रार्थना।

शास्त्री नारायणस्वरुपदास के आशीर्वाद
सह जय स्वामिनारायण

1819-2019 200 वचनामृत द्विशताब्दी महोत्सव

100 प्रमुखस्वामी महाराज शताब्दी महोत्सव 1921-2021